अंक-02, सितम्बर 2020

गुरु-दर्शन

राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

'मनखे–मनखे एक समान'

बाबा गुरु घासीदास
1756 - 1850

कुलगीत

गुरु कृपा के पुण्य परस से, विद्या का वरदान है।
घासीदास विश्वविद्यालय, हम सब का अभिमान है।
महानदी, शिवनाथ, नर्मदा, हसदो, पावन धारा है।
अंतः सलिला अरपा का, सतत् प्रवाह हमारा है।
छत्तीसगढ़ की माटी का, यह अभिषेक महान है।
भोरमदेव, सरगुजा, शिवरी, रतनपुर, मल्हार यहीं।
कालिदास का आम्रकूट है, अमर काव्य श्रृंगार यहीं।
धरती, गगन, सघन वन गूंजे, जीवन का नवगान है।
शस्य भगीरथ कोरबा जैसी, लोक-शक्ति की लाली है।
जाग उठे हैं गांव हमारे, जागे सभी किसान हैं।
ज्ञान सभ्यता से आलोकित, विद्वत्जन सम्मान जहां।
माधव, लोचन, मुकुटधर पाण्डेय, बख्शी जी अरु भानु यहां।
राव, विप्र, रविशंकर, छेदी, कुंवर वीर का गान है।
मानव मूल्यों का सृजन करें हम, समता, ममता, शांति भरे।
हर्षित, पुलकित हो भारत मां, सुख-समृद्धि सर्वत्र झरे।
विद्या-मंदिर के प्रांगण से, नव-युग का अभिमान है।
गुरु कृपा के पुण्य परस से, विद्या का वरदान है।

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय का यह कुलगीत प्रसिद्ध राजनेता एवं ख्यातिलब्ध साहित्यिक कवि और छत्तीसगढ़ विधानसभा के प्रथम अध्यक्ष स्व. **पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल द्वारा रचा गया है।**

गुरु-दर्शन

(राजभाषा प्रकोष्ठ की वार्षिक पत्रिका)

संरक्षक
प्रो. अंजिला गुप्ता
कुलपति

प्रबंधन
प्रो. शैलेन्द्र कुमार
कुलसचिव

सम्पादक
अखिलेश कुमार तिवारी
हिंदी अधिकारी

सम्पादक मण्डल
प्रो. देवेन्द्र नाथ सिंह
डॉ. घनश्याम दुबे
डॉ. रमेश कुमार गोहे
संतोष कुमार त्रिपाठी
डॉ. सीमा पाण्डेय
डॉ. एस.एस. ठाकुर
डॉ. अनामिका तिवारी

राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
दूरभाष : (07752) 260473
ई–मेल–rajbhashacellggu@gmail.com

आवरण

गुरु-दर्शन

दर्शन का संबंध साक्षात्कार से है। साक्षात्कार के व्यापक संदर्भों में से एक आत्म साक्षात्कार भी है। आत्म साक्षात्कार का संबंध खुद को जानने, समझने और सीखने से है। हमारे सीखने या जानने के जो भी स्रोत हैं, उन्हें हम गुरु रूप में स्वीकार करते हैं। मनुष्य प्रकृति में सीखने या जानने का सबसे उत्सुक प्रतीक है उसने अपना समस्त ज्ञान प्रकृति से ही अनुभूत कर अर्जित किया है। सहजता ज्ञान का प्रमुख उपादेय है समता के बीज इसी में सन्निहित हैं। ज्ञान 'स्व' से परे 'पर' की स्वीकारोक्ति देता है। यह 'पर' का स्वीकार ही हमें संवेदनशील बनाता है, और सत्य के अधिक निकट ले जाता है। अठारहवीं सदी के महान संत एवं सतनाम पंथ के प्रवर्तक गुरु घासीदास जी, जिनके नाम पर यह विश्वविद्यालय स्थापित है, ने अपनी अमृतवाणी में इसी समता और सत का संदेश दिया है। आवरण चित्र के माध्यम से गुरु घासीदास जी के संदेशों के अनुरूप समता और सत्य के प्रकाश को मनुष्य द्वारा स्वीकार करते हुये उसे ज्ञान के माध्यम से अधिक मानवीय, सहज एवं सत्यनिष्ठ होने के प्रतीक रूप में दर्शाया गया है।

(आवरण पृष्ठ की साज–सज्जा विश्वविद्यालय की टीम उड़ान–8 के छात्र–छात्राओं ने की है)

हिंदी दिवस पर प्रसारित संदेश

मा.श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक'

शिक्षा मंत्री, भारत सरकार

प्रिय साथियों,

भाषा किसी भी राष्ट्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की संवाहिका होती है। कोई भी देश अपनी भाषा के बिना अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को मौलिक रूप में परिभाषित नहीं कर सकता है। राष्ट्र की शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति में उस राष्ट्र की भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी भी सुदृढ़ एवं मजबूत राष्ट्र की पहचान इस बात से होती है कि उसकी अपनी भाषा कितनी व्यापक एवं समृद्ध है।

संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान में, अन्य बातों के साथ–साथ, प्रावधान किया कि संघ हिंदी भाषा का विकास करे और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप शैली और पदों को आत्मसात करते हुए संस्कृत और अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

साथियों संविधान द्वारा यह जो दायित्व हमें सौंपा गया है, हमें उसका निर्वहन करना है। शिक्षा मंत्रालय हिन्दी के साथ–साथ अन्य सभी भारतीय भाषाओं के विकास के लिए प्रतिबद्ध है। आज हम, हिंदी में ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी उत्कृष्ट साहित्य का सृजन कर रहे हैं। हमें इन भाषाओं को साथ लेकर हिंदी का विकास करना है।

'हिंदी दिवस' के अवसर पर मंत्रालय का प्रत्येक कार्यालय इस पर्व को उत्साहपूर्वक मनाए, विभिन्न आयोजन करें और यह निश्चय करे कि सरकारी कार्य अधिक से अधिक हिंदी में हो । सरकारी कार्य हिंदी में करने के लिए आज अनेक टूल्स उपलब्ध हैं। हम इनका उपयोग करें एवं संकल्प लें कि हम हिंदी के व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए पूर्ण समर्पण एवं निष्ठाभाव से कार्य करेंगे।

हिंदी दिवस के अवसर पर आप सभी को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं !

जय हिंद !!

संदेश

प्रो. अंजिला गुप्ता
कुलपति

भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है। हिंदी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि भाषा जितनी सरल, सहज और शालीन होगी, उतनी ही संप्रेषणीय व ग्राह्य भी होगी। इन सभी गुणों के समावेश से ही हिंदी का परचम पूरे विश्व में लहरा रहा है। आज भारत के राजनीतिक मानचित्र से बहुत बड़ा होता और फैलता जा रहा है हिन्दी का यह भाषायी मानचित्र।

मनुष्य अन्य प्राणियों से इसी अर्थ में भिन्न और महत्वपूर्ण है कि उसके पास न सिर्फ भावाभिव्यक्ति, बल्कि अर्जित ज्ञान–विज्ञान के सम्प्रेषण हेतु सशक्त माध्यम के रूप में उसकी एक भाषा है। भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है जहाँ अनेक उप भाषाएं एवं बोलियां भी हैं। विश्व की लगभग 6500 भाषाओं एवं भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 22 भारतीय भाषाओं में राजभाषा हिंदी का अपना विशिष्ट महत्व है, क्यों कि इसमें सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास सुरक्षित और संरक्षित है।

विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली दूसरी भाषा हिंदी है। यह बहुत सरल और एक वैज्ञानिक भाषा है जिसका स्वर विज्ञान कर्ण प्रिय और माधुर्य से युक्त है। हिंदी भाषा को एक मानक भाषा के रूप में अंगीकार करने में कही कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि यह सर्वमान्य, सर्व स्वीकृत, एवं सर्व प्रतिष्ठित है।

हमारे देश की स्वतंत्रता में हिंदी भाषा का योगदान सर्व विदित है। राष्ट्रीय एकता और अखंडता स्थापित करने में इसकी अभूतपूर्व भूमिका रही है। आज हिंदी केवल बोलचाल की भाषा मात्र नहीं है, यह हमारी राष्ट्रीय अस्मिता और गौरव का प्रतीक है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी हिंदी के अनन्य समर्थक थे। राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर हिंदी के लिए उन्होंने कहा था–**"हृदय की कोई भाषा नहीं है, हृदय–हृदय से बातचीत करता है और हिन्दी भारत के हृदय की भाषा है"**

हमारे विश्वविद्यालय में भी लगभग समस्त कामकाज हिंदी में ही होता है। इसे और अधिक जनप्रिय बनाने, संरक्षण और संवर्धन करने हेतु विश्वविद्यालय के राजभाषा प्रकोष्ठ की वार्षिक पत्रिका **'गुरु–दर्शन'** की रचनात्मक भूमिका के प्रति हम आशान्वित हैं! भविष्य में यह विश्वविद्यालय की रचनात्मकता का आईना बन सकेगी, ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है। इस अंक में प्रकाशित रचनाकारों के साथ मैं संपादकीय मंडल को भी अपनी बधाई एवं शुभकामनाएं प्रेषित कर रही हूं।

संदेश

प्रो. शैलेन्द्र कुमार
कुलसचिव

यह सौभाग्य का विषय है कि भारत सरकार की राजभाषा नीति के अनुरूप हमारा विश्वविद्यालय हिंदी में कार्यालयीन कार्य के लिये प्रतिबद्ध है। विश्वविद्यालय के सभी अधिकारी, कर्मचारी एवं शिक्षक हिंदी बोलते, लिखते है ओर समझते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए विश्वविद्यालय का राजभाषा प्रकोष्ठ अपनी वार्षिक पत्रिका **'गुरु–दर्शन'** के **द्वितीय अंक** का प्रकाशन करने जा रहा है।

विश्वविद्यालय के शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों की रचनात्मक प्रतिभा को मंच प्रदान करने के लिए **'गुरु–दर्शन'** का प्रकाशन आरंभ किया गया। यह पत्रिका हिंदी के रचनाकारों की अपनी भावनाओं को शब्दों में उतारने के लिए अवसर भी प्रदान कर रही है। राजभाषा प्रकोष्ठ का यह प्रयास विश्वविद्यालय की साहित्यिक गतिविधियों को नई ऊंचाई प्रदान करेगा।

भाषा केवल कार्यालयीन कामकाज का माध्यम ही नहीं, हमारी सभ्यता, संस्कृति, परम्परा व अस्मिता की पहचान भी है। अपनी भाषा में काम करने से न केवल हमें गर्व की अनुभूति होती है, बल्कि यह हमारे भीतर राष्ट्रीयता का भाव भी जगाता है। भाषा को अक्षुण्ण बनाए रखने में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। साहित्यिक पत्रिका **'गुरु–दर्शन'** का प्रकाशन भी हमें राष्ट्रीयता का बोध कराता है। इस पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी शुभकामनाएं प्रेषित है।

सम्पादक की कलम से...

अखिलेश कुमार तिवारी
हिंदी अधिकारी

भाषा संस्कृति की संवाहक होती है। हर राष्ट्र की अपनी एक भाषा होती है और यही भाषा पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है। आज हिंदी हमारे देश में सर्व स्वीकार्य भाषा है। चाहे तमिलनाडु, केरल, कनार्टक आदि दक्षिण भारत के राज्य हों या फिर उत्तर पूर्वी प्रदेश, सभी जगह हिन्दी बोली और समझी जाती है। यह बात अलग है कि हिन्दी अब तक राष्ट्र भाषा के तौर पर स्थापित नहीं हो पाई। 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया, जिसे हम हिन्दी दिवस के रूप में मनाते हैं।

हिन्दी की लोकप्रियता एवं स्वीकार्यता लगातार बढ़ रही है, न केवल हमारे देश में बल्कि विदेशों में भी। आंकड़े बताते हैं कि हिंदी को सरकार की भाषा (राजभाषा) का दर्जा तो दिया ही गया है, यह व्यापार की भाषा भी बन गई है। हिन्दी माध्यम के छात्र–छात्राओं का प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता का प्रतिशत लगातार बढ़ रहा है। वैश्विक महामारी के इस दौर में क्वारंटाइन, लॉकडाउन, आइसोलेशन जैसे शब्दों को अपने आंचल में समेट कर हिंदी ने पुनः सिद्ध कर दिया है कि यह विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों के लिए सागर है। इस सागर में कई भारतीय एवं विदेशी भाषाएं आदिकाल से लेकर अब तक लगातार समाहित हो रही हैं।

गुरू घासीदास विश्वविद्यालय में हिंदी प्रेमियों एवं हिंदी सेवियों की रचनाधर्मिता को प्रोत्साहित करने के लिए राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा **'गुरु–दर्शन'** के इस **द्वितीय अंक** का प्रकाशन किया जा रहा है। इस अंक में हिंदी रचनाशीलता की अलग–अलग विधायें, मसलन कविता, कहानी, संस्मरण आदि के साथ–साथ भाषा एवं संस्कृति पर विचार प्रधान आलेखों का समावेश है। पाठकों के अमूल्य सुझावों से पत्रिका के आगामी अंक को बेहतर बनाने में सहायता मिलेगी।

अनुक्रम

संपादक की कलम से

कहानी

अवांतर–कथा 8 – डॉ. देवेन्द्र

आलेख

नयी शिक्षा नीति में भारतीयता का विकास 14 – प्रो. पी.के. बाजपेयी
समय प्रबंधन : एक नितान्त आवश्यक कार्य 19 – डॉ. हरीश कुमार
उम्मीदों की गोधूलि में : प्रमथ्यू गाथा 21 – डॉ. गौरी त्रिपाठी
ईमानदारी : एक जीवन शैली 25 – चन्द्रकली
ईमानदारी : एक जीवन शैली 27 – आकृति ताम्रकार
मिथिला–क्षेत्र एक पौराणिक परिचय 29 – डॉ. सम्पूर्णानन्द झा
जल, जंगल, जमीन का संकट और आधी आबादी 32 – डॉ. अमिता
डॉ. खूबचंद बघेल : छत्तीसगढ़ राज्य के प्रथम स्वप्नद्रष्टा 35 – डॉ. रमेश कुमार गोहे
स्त्री त्रासदियां और बाज़ार 37 – डॉ. अखिलेश गुप्ता
विश्वसनीयता का संकट और डिजिटल मीडिया 40 – डॉ. गुरु सरन लाल
कोरोनाकाल में सोशल मीडिया 43 – डॉ. अनुपमा कुमारी
सोशल मीडिया, युवा और भाषा 45 – डॉ. शिवकृपा मिश्र
हिन्दी भाषा का वर्तमान परिदृश्य 49 – डॉ. अनामिका तिवारी

कविता

कैसे कह दूं ? 50 – डॉ. एम.एन. त्रिपाठी
अंतिम संदेश 50 – डॉ. एम.एन. त्रिपाठी
हॉ, मैं भी इन्सान हूँ 51 – प्रो. वी.डी. रंगारी
नेति – नेति 55 – डॉ. संतोष सिंह ठाकुर
कोलाज 56 – डॉ. शोभा बिसेन
टेसू न जाने क्यों 56 – डॉ. निशु सिन्हा

डॉ. देवेन्द्र

अवांतर-कथा

'माँ' मेरे लिए एक शब्द है। महज शब्द। पिछले बीस सालों से मैं इस शब्द का अर्थ खोज रहा हूँ। एक ऐसा अर्थ जो जीवित और ठोस हो। जो मूर्तिमान हो, जिसमें से ममता पिघल रही हो और जिसे मैं पहचान सकूं। उसी तरह जैसे हर बेटा अपनी माँ को पहचान लेता है। लेकिन सिर्फ अधूरी और बेतरतीब यादों के सहारे यह संभव नहीं हो पाता। जब मैं पाँच साल का था और माँ की गोद से चिपट कर सोता था, उन्हीं दिनों की कुछ संवेदनाएँ और अनुभव हैं जो अब भी, जब कभी माँ के बारे में सोचता हूँ, कौंध उठते हैं। उसके बाद बीस सालों की मेरी जिन्दगी है जिसे मैं अपने गाँव और घर में रहकर अपने पिता के साथ जीता चला आया हूँ।

इन बीस सालों के कुछ अपने संस्कार और विचार हैं। इन्हीं संवेदनाओं और संस्कारों के बीच बढ़ा हुआ मेरा अब तक का जीवन है। यह जीवन जिस गाँव और घर में रहकर अपने लिए हवा, पानी और खुराक लेता रहा है, वह गाँव और घर मेरी माँ को एक आवारा और बदचलन औरत मानता है। पिछले बीस सालों से मैं अपने पिता को एकदम शान्त और चुप पाता हूँ। जहाँ तक मुझे याद है, और जैसा कि गाँव वाले भी बताते हैं, पिताजी पहले ऐसे नहीं थे। अक्सर अब वे घर या गाँव में कहीं भी रहते हुए किसी के मामले में कुछ नहीं बोलते। अगर मुझे इस गाँव या घर से निकाल दिया जाए तो 'माँ' यहाँ एक मृत अध्याय की तरह हैं, जिनसे किसी को कुछ लेना–देना नहीं। गाँव वाले जब किसी औरत को आवारा या बदचलन कहना चाहते तो मेरी माँ उनके लिए एक ऐसे मिथक की तरह याद आती है जो इस गाँव–गाथा में अवान्तर–कथा की तरह जुड़ी है।

पिताजी माँ के विषय में क्या सोचते हैं? यह मैं आज तक नहीं जान सका। जब से माँ पिताजी को छोड़कर चली गयीं तबसे इन्होंने उनके विषय में कुछ नहीं कहा। माँ के

चले जाने के बाद अक्सर पिताजी मुझे अपने ही साथ रखते। चाहे खेतों में काम करने जाते या बाजार में सामान खरीदने, हरदम मुझे साथ लिए रहते। एक बार सिवान में पेड़ों के नीचे बैठा हुआ मैं नहर पर बगुलों के झुण्ड देख रहा था। पिताजी गौर से मेरी ओर देखते रहे। अचानक उन्होंने मुझे जोर से पकड़ा और मेरी आँखों को चूम लिया। पिताजी हरदम खामोश रहा करते। ऐसा कुछ भी करना उनके स्वभाव के विपरीत था। मुझे बहुत अटपटा और आश्चर्यजनक लगा। एक दिन एक आदमी से बात करते हुए उन्होंने मेरे बारे में बताया कि इसकी आँखें बिल्कुल अपनी माँ पर गयी हैं। उसी तरह बड़ी–बड़ी और चंचल।

यह जानते हुए भी कि माँ अब मुझे कभी नहीं मिलेंगी, मैं माँ को लगातार खोजता रहा हूँ, और अपनी बेतरतीब धुँधली स्मृतियों के सहारे उनकी एक तस्वीर बनाया करता हूँ। कम उम्र में ही उनकी शादी हो गयी थी। शादी के बाद पिताजी ने पढ़ाई छोड़ दी थी, लेकिन वे लगातार पढ़ती रहीं। खुद पिताजी और हमारे घर वाले भी माँ की पढ़ाई पसंद नहीं करते थे। इसलिए वे अकेले शहर में रहकर पढ़ती रहीं। पिताजी अब अक्सर वहाँ जाया करते थे। पन्द्रह दिन या महीने भर तक पड़े रहते। माँ को इस तरह वहाँ पिताजी का पड़ा रहना अच्छा नहीं लगता था।

उन दिनों मैं बहुत छोटा था। तकरीबन पाँच–छः साल का। कोई बात पूरी तरह समझ में तो आती नहीं थी। फिर भी मुझे याद है कि अक्सर पिताजी और माँ खाली कमरे में एक–दूसरे से झगड़ते रहते। माँ मुझे छोड़कर पढ़ने चली जाया करतीं। मैं रोते हुए घंटों छत की मुंडेर पर बैठकर उनकी प्रतीक्षा किया करता। थकी–प्यासी सी माँ जब साँझ को लौटतीं तो देर तक मुझे सीने से चिपटाये रहतीं। मुझे सिर्फ इतना ही याद है कि इस बीच अक्सर पिताजी से कुछ न कुछ लड़ाई चलती रहती।

माँ की पुरानी किताबों के बण्डल में मुझे एक लाल रंग की डायरी मिली। आज जबकि मैं इस डायरी के शब्द पढ़ सकता हूँ तब माँ भी मेरी समझ में ज्यादा आती हैं। उन्होंने अंग्रेजी में एम.ए. की परीक्षा पास की थी। हिन्दी में कविताएँ भी लिखती थीं। पुरानी किताबों के बण्डल में ही मुझे एक पत्रिका मिली, जिसमें माँ की फोटो के साथ एक कहानी छपी है। यह कहानी गाँव के एक चरवाहे पर लिखी गयी है। आज जबकि मैं खुद कहानियाँ लिखता हूँ और कहानियों का एक सजग पाठक भी हूँ, तब यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि उस कहानी में गाँव के जो कुछेक चित्र आये हैं, उसमें दृश्यों को प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता है। जब पहली बार मेरी कहानी छपी थी और जब पिताजी ने उसे देखा तो उनके चेहरे पर एक ऐसा भाव उभरा जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। उनकी आँखों का विस्तार जहाँ तक था, उसमें एक भय सा तैर गया। वे परेशान से हो उठे और दूसरी ओर चले गए। माँ जबसे मुझे छोड़कर चली गयीं तबसे पिताजी ने कभी मुझे डाँटा नहीं था। इस घटना के महीनों बाद एक साँझ मैं बाजार से लौट रहा था। हम दोनों लोग खामोश थे। अँधेरा घिर रहा था। रास्ते में दूर–दूर तक कहीं कोई आदमी नहीं था। अचानक पिताजी ने बहुत धीरे से मुझसे पूछा–तुम और क्या–क्या लिखते हो? हल्के–फुल्के शब्दों का यह बहुत ही छोटा सा सीधा–सपाट सवाल था। लेकिन मुझे लगा कि पिताजी बहुत परेशानी में इसे ढोते रहे हैं। वे दूसरी ओर देख रहे थे। फिर उन्होंने पूछा–क्या तुम कविताएँ भी लिखते हो?

मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि सकारात्मक उत्तर पिताजी को कैसा लगेगा और कुछ बोल नहीं पाया। तब उन्होंने खुद ही कहा–आदमी की जो मरजी हो, करना चाहिए। बस उसे यह देखना चाहिए कि उससे किसी दूसरे का नुकसान न हो। अचानक लगा कि किसी भारी उल्के ने मुझे सोते में झकझोर दिया है। और मैं चक्कर खाता हुआ आसमान से गिर रहा हूँ। माँ की डायरी में एक जगह यही वाक्य हू–ब–हू लिखा था। बचपन की जितनी भी बातें धुँधली यादों के सहारे मेरे भीतर पड़ी हुई हैं उनसे मैं यही नतीजा निकालता कि माँ और पिताजी दोनों एक–दूसरे को देखना भी पसंद नहीं करते थे। फिर भी डायरी का वह वाक्य पिताजी की जबान पर हू–ब–हू कैसे पड़ा हुआ है। यह एक ऐसी घटना थी जो मुझे कई सालों तक बेचैन किए रही। चुप्पी पिताजी की एक स्थायी आदत थी, जिसकी वजह से मैं हरदम उनके साथ रहते हुए भी

कुछ–कुछ डरता रहता। माँ के चले जाने के बाद पिताजी ने दूसरी शादी नहीं की। हालाँकि हमारे घर वाले ऐसा चाहते थे। शायद माँ का भी यही ख्याल था कि बाद में पिताजी दूसरी शादी कर लेंगे। पिताजी के लिए उन्होंने एक जगह लिखा है–यह आदमी एक भी रात औरत के बिना नहीं रह सकता। लेकिन पिताजी ने बीस साल बिता दिया। कैसे? यह कोई नहीं जान सका। बचपन से ही मैं उनके साथ सोता आया हूँ। जब भी कभी मेरी नींद टूटी, मैंने पिताजी को जागते हुए पाया। गाँव वाले पिताजी के विषय में कहते हैं कि यह आदमी एकदम बदल गया।

गाँव वाले, घर वाले और खुद पिताजी तक इस बात को जानते हैं कि अगर शुरू में ही माँ को पढ़ने से रोक दिया गया होता तो अन्ततः यह नौबत नहीं आती। बाद की घटनाओं की वजह से पढ़ाई–लिखाई के प्रति पिताजी के मन में गहरी वितृष्णा भर गयी थी। एक घटना मुझे अब भी अक्षरशः याद आती है। जब एक साँझ कालेज से लौटकर माँ मुझे पढ़ा रही थीं, तब पिताजी मुझे लेकर बाहर चले गये। देर रात लौटने के बाद पिताजी और माँ में खूब लड़ाई हुई। पिताजी ने कहा–मैं अपने लड़के को नहीं पढ़ने दूंगा। तुम्हारा अपना लड़का होगा तो पढ़ाना। उस समय खुद मुझे भी पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। जिस हद तक मैं सोच सकता था उसमें मुझे लगा कि पिताजी ठीक हैं। लेकिन बाद में जब माँ चली गयीं तो खुद पिताजी मुझे घंटों बैठा कर पढ़ाया करते।

जब पहली बार मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिए आया तो मुझे माँ की बहुत याद आयी थी। मुझे लगा कि इन्हीं सड़कों पर माँ घूमती रही होंगी। क्या आज से बीच–पच्चीस साल पहले भी ये सड़कें रही होंगी? क्या यह 'कैफेटीरिया'रहा होगा? तब तो माँ जरूर चाय पीने आती रही होंगी? 'कैफेटीरिया'का बूढ़ा नौकर तीस साल से यहीं है। कई बार मेरे मन में आया कि माँ की फोटो दिखाकर इससे पूछूँ कि क्या तुम इन्हें पहचान सकते हो? इसकी उम्र भी माँ के ही बराबर होगी। तब तो यह निश्चित ही जानता होगा। मेरी माँ बहुत ही सुन्दर थीं। अंग्रेजी विभाग के बूढ़े प्रोफेसर तो निश्चित ही उन्हें जानते होंगे। लेकिन मैंने कभी किसी से पूछा नहीं। पता नहीं लोग माँ के विषय में क्या–क्या सोचते हों।

माँ ने जिस आदमी से प्रेम किया था और बाद में जिसके साथ चली गयीं, मैं उस आदमी से भी एक बार मिलना चाहता हूँ। कुछ इस तरह कि वह मेरे बारे में कुछ भी न जानता हो। आज उस आदमी को मैं सिर्फ एक बार देखना चाहता हूँ। जिसे माँ ने चाहा होगा, वह कैसा होगा? बचपन में जितना देखा है उससे कुछ खास याद नहीं आता। कुछ टूटे–फूटे से धुँधले–धुँधले बिम्ब हैं। वह जब भी मेरे घर आता था, माँ घण्टों उसके साथ बैठकर बातें करती रहतीं। अक्सर माँ चुप और शान्त रहती थीं, लेकिन उस आदमी के साथ वे खूब हँसतीं। वह अक्सर माँ के बाल पकड़कर खींच दिया करता और वे बच्चों की तरह मचलने लगतीं। वे लोग घण्टों बैठकर किताबें पढ़ा करते। जोर–जोर से बातें करते। पिताजी के रहने पर घर में जो खामोशी और घुटन भरी रहती उसका कुछ पता ही नहीं चलता।

आज भी मैं कभी–कभार अंग्रेजी विभाग जाया करता हूँ। पहली बार माँ मुझे लेकर 'यूनिवर्सिटी'में आयी थीं। वहीं मैंने उस आदमी को पहली बार देखा था। माँ ने बताया था–बेटे, ये तुम्हारे अंकल हैं। माँ के क्लास में बहुत सारी लड़कियाँ थीं। सब देर तक मेरे साथ खेलती रहीं। बाद में मैं, माँ और वह अंकल एक साथ आये थे। वह मेरे घर के पास तक माँ के साथ आया था। उसके बाद वह अक्सर घर आने लगा। एक बात मुझे और याद आती है। एक बार पिताजी घर में थे उसी समय वह अंकल आये। माँ दूसरे कमरे में उसके साथ थीं। मैं पिताजी के पास था। थोड़ी देर बाद पिताजी ने मुझसे कहा–बेटे, जा देख तो तुम्हारी माँ उस आदमी के साथ क्या कर रही हैं? मैं वहाँ गया। माँ और वह अंकल एक ही चारपायी पर बैठकर बातें कर रहे थे। बीच में किताब थी। मैंने आकर पिताजी से कहा–मम्मी पढ़ रही हैं। बहुत देर बाद जब वह अंकल चले गए तो माँ और पिताजी में खूब झगड़ा हुआ। मुझे इतना और याद आता है कि इसके बाद पिताजी जब भी गाँव से आते मुझसे पूछा करते–बेटे, तुम्हारे अंकल आए

थे? तब मैं इस सवाल का कुछ मतलब नहीं जानता था, जैसा भी मन में आता पिताजी को खुश करने के लिए बता देता।

जब कभी पिताजी खुश रहते तो मुझे घंटों बाजार में घुमाया करते। जब कभी माँ खुश रहतीं तो मुझे खूब कहानियाँ सुनाया करतीं और देर तक मेरे साथ खेलतीं। पिताजी को खुश करने के लिए मैं उस अंकल के बारे में बता दिया करता। मैं हर समय चाहता था कि माँ भी खुश रहें। लेकिन अक्सर यह संभव नहीं हो पाता। बचपन के उस छोटे से जीवन में अब भी जिस हद तक मेरी स्मृतियाँ पहुँच पाती हैं तो मैं वातावरण की तीखी गन्ध को अपने भीतर महसूस करने लगता हूँ जो माँ और पिताजी के साथ–साथ रहने पर उस कमरे में भरी होती थी। लगता था हम सारे लोग इस घर में कैद हैं। कमरे की एक–एक चीज जैसे जबर्दस्ती बँधी हुई हो। सब जैसे भागना चाहते हैं। लेकिन भाग नहीं पा रहे हैं। एक खामोश घुटन! जबकि मुझे याद है न पिताजी का स्वभाव ऐसा था, न माँ का ही। अंकल के साथ माँ जिस तरह से उन्मुक्त रहती थीं, शायद वही उनका असली स्वभाव था। उन दिनों मेरे पास कोई समझ नहीं थी सिर्फ अहसास थे, जिनके कारण मुझे लगता कि इस घर में अंकल के लिए न तो कोई चारपायी है, न खाने के लिए कोई थाली, और न ही कपड़े टाँगने के लिए कोई खूँटी। फिर भी यह आदमी अनावश्यक रूप से यहाँ आता है। मैं माँ को हमेशा खुश देखना चाहता था। मुझे अकेले माँ के साथ भी बहुत अच्छा लगता था। लेकिन अंकल और माँ के साथ मुझे बहुत घबराहट होती थी। मैं सहज नहीं रहता था। यही कारण था कि पिताजी जब कभी गाँव से आते मैं उन्हें उस अंकल के आने की बात सबसे पहले बता दिया करता था।

जो कुछ बीत चुका है आज उसका कोई मतलब नहीं है। और 'माँ' मेरे लिए सिर्फ एक शब्द भर है। एक अर्थ में जीवन से कटा और अप्रासंगिक। फिर भी विश्वविद्यालय की इन सड़कों पर टहलता हुआ, मैं अक्सर माँ के बारे में सोचा करता हूँ। लम्बे–लम्बे दरख्तों से घिरी इन सुनसान सड़कों पर जब भी मैं अकेला होता हूँ मुझे एक उदास संगीत सा सुनाई देता है। दूर–दूर तक फैला वातावरण और सुरमई साँझ मुझे किसी लम्बी प्रतीक्षा में थकी और दर्द में डूबी हुई महसूस होती है। पता नहीं माँ आज जीवित भी होंगी या नहीं? मिलने पर न तो वे मुझे पहचान सकती हैं, न मैं उन्हें पहचान सकता हूँ। मिलकर हम लोग बात भी क्या करेंगे? यह भी मालूम नहीं। पिताजी ने मुझसे माँ के विषय में कभी कुछ भी नहीं कहा है। मेरे गाँव के बाहर बरगद का एक बहुत बड़ा और घना पेड़ है। इतना घना कि दिन में भी उसकी पत्तियाँ और शाखाएं अँधेरे में डूबी रहतीं। बचपन से ही ऐसा होता रहा कि जब कभी मैं धूप से थक जाता वहीं जाकर जी भर छँहाता था। सिवान में अकेले खड़े उस पेड़ में मुझे अपने पिताजी की आत्मा महसूस होती। वह आँधी और बारिश में भी निर्विकार खड़ा रहता। जब भी मैं गाँव जाता हूँ, वह पेड़ मुझे दूर से ही दिखायी देता–त्रासद कहानियों के मनहूस नायक की तरह–वीरान और प्रतिक्रिया–हीन। रहस्यमय।

जब मैं विश्वविद्यालय में पढ़ने आया तो मेरा परिचय एक ऐसे आदमी से हुआ जो अच्छी नौकरी छोड़कर गाँवों में किसानों के बीच काम करता था। अखबार निकालने की गरज से कभी–कभार शहर आया करता। मेरे पिताजी की ही तरह धोती–कुर्ता पहनता और सुर्ती खाता। उन्हीं की तरह लम्बा और सांवला। लेकिन उनके विपरीत खूब हँसता। वह रात–बेरात कभी भी आता। देर तक हम लोग सड़क पर टहलते हुए बातें किया करते। उसने मुझे फूलों और पौधों के विषय में बहुत सारी बातें बतायी। तरह–तरह के आदमियों के किस्से सुनाया करता। बातों को बयान करने का उसका तरीका इतना दिलचस्प होता कि मैं सारी–सारी रात जागकर उसके साथ घूमता रहता। कभी–कभी महीनों गायब रहने के बाद भी जब वह नहीं आता तो मैं बेसब्री से उसकी प्रतीक्षा किया करता। उसकी उम्र भी मेरे पिताजी के ही बराबर थी। लेकिन वह मुझे अपनी ही उम्र का लगता था। एक बार अनायास ही मेरे मन में आया कि कहीं यह आदमी ही तो अंकल नहीं है। माँ इसी तरह उसकी प्रतीक्षा किया करती थीं। तब जिन्दगी में पहली बार मैंने किसी आदमी से अपनी माँ के बारे में बात की। अपनी आदत के मुताबिक वह बड़ी तन्मयता से मेरी

बातें सुनता रहा। इस पूरे क्रम में वह भीतर से क्या सोचता रहा, मैं कुछ भी नहीं जान सका।

महीनों बाद किसी वजह से मैं बहुत निराश और पश्तहिम्मत होकर पड़ा था। वह आया और मुझे लेकर सड़क पर टहलने निकल गया। अँधेरी रात का सन्नाटा था। बातचीत का कोई क्रम ही नहीं बन पा रहा था। तभी उसने कहा–जिनकी माँ इतनी बहादुर रही हो उसके बेटे को ऐसी बातों से थोड़े घबराना चाहिए। अचानक माँ के प्रकरण से मैं चैंक गया। आज तक लोगों ने मेरे पिताजी की तो तारीफ की थी, लेकिन माँ के बारे में किसी ने ऐसा नहीं कहा था। फिर तो माँ और पिताजी को लेकर बहुत देर तक बातें हुईं। वह बार–बार माँ के पक्ष में बोल रहा था। जब मैं बार–बार पिताजी की अच्छाइयाँ बता रहा था तो उसने कहा–वह तो तुम अपने पिताजी के साथ रहने की वजह से सोचते हो। अपने गाँव वालों से असहमत होते हुए भी तुम अपनी माँ से सहमत थोड़े हो। उसने फिर कहा–वह समाज जहाँ आदमी को फैलने की अनेकों संभावनाएँ हैं वहाँ तुम्हारे पिताजी ने खुद को समेट कर जिन्दगी जी है। सिर्फ तुम्हारे भीतर उन्होंने अपनी जिन्दगी समेट ली। सो, अगर तुम्हें वे अच्छे लगते हों तो कोई बात नहीं। लेकिन तुम्हारी माँ ने औरत होकर अपने को फैलाया। यह बड़ी बात है। इतनी बड़ी कि तुम तमाम उम्र इस पर गर्व कर सकते हो। जबकि अपनी माँ को लेकर तुम्हारे मन में कुंठा है। तुम ऐसे मत सोचो कि वह तुम्हें और तुम्हारे पिताजी को छोड़कर दूसरे आदमी के साथ चली गयी। बल्कि ऐसे सोचो कि जिन्दगी में उसने 'स्थिरता' की जगह 'गति' को पसंद किया। इस क्रम में तुम उससे छूट गये और तुम्हारे पिताजी को उसने छोड़ दिया।

काफी रात टहलने और बातें करने के बाद जब हम लोग कमरे में आये तो वह थोड़ी देर बाद सो गया, लेकिन मैं जागता रहा। माँ के प्रति मेरे मन में जो एक अमूर्त सी संवेदना थी वह पहली बार ठोस और मूर्तमान होती सी लग रही थी। पहली बार मुझे उसके लिए तर्क मिला। अब तक मैं अपने को माँ और पिताजी के बीच में रखकर उन लोगों को देखता था। लेकिन उस दिन पहली बार मैं एक तीसरे आदमी की तरह दूर और तटस्थ था। फिर तो बचपन की वे यादें, जिन पर समय और परिस्थितियों ने मोटी गर्द जमा कर दी थी, मेरे सामने साफ और मूर्त होने लगीं।

वह एक ऐसी सच्चाई है जिसे सोचते हुए मुझे आज भी डर लगता है। आज पिताजी जिस रूप में हैं उसे देखते हुए मैं यह विश्वास नहीं करना चाहता कि वह सारा कुछ पिताजी ने ही किया था। बीते हुए भयावह दुःस्वप्न की तरह वह दृश्य मेरे मन की अँधेरी पर्तों के बीच भी जब कभी कौंधता, मैं समूचा काँप जाता। अगर कोई दूसरा मुझे वह बात बताता तो मैं यकीन नहीं करता। लेकिन खुद मेरा बचपन उसका चश्मदीद गवाह था। बचपन, जो कि समझदार भले न हो लेकिन जो देख सकता था, और अहसास कर सकता था।

रात का समय था। माँ मुझे लेकर चारपायी पर सोयी थीं। पिताजी बगल की चारपायी पर थे। उन्होंने माँ से कई बार कुछ पूछा। संभवतः उस अंकल के बारे में ही पूछा होगा। माँ पिताजी की बातों को कोई महत्व नहीं देती थीं। जब पिताजी ने कई बार पूछा और माँ ने कोई महत्व नहीं दिया तो अचानक वे बहुत जोर से चीखे। मैं सोया नहीं था लेकिन डर के मारे चुप लगा गया। माँ ने कहा–चीखना हो तो सड़क पर जाओ। यह घर तुम्हारा नहीं है। पिताजी यह कहते हुए उठे कि अभी बताता हूँ, यह घर किसका है? तुम किसकी हो? उन्होंने मुझे उठाया और करीब–करीब जमीन पर पटक सा दिया। मैंने पिताजी को ऐसे कभी नहीं देखा था। मैं जगा था लेकिन वैसे ही चुपचाप पड़ा रहा।

पिताजी ने माँ के बाल नोचे। कई थप्पड़ मारे। माँ का हाथ मुड़कर पीछे की ओर दबा था। डर के मारे मुझे पूरी रात नींद नहीं आयी। दूसरे दिन पिताजी ने बाहर से किवाड़ बंद कर दिया। माँ भीतर पड़ी रहीं। यही क्रम तीन–चार दिन तक चलता रहा। एक दिन जब वे मुझे नहलाने के लिए उठीं तो उनका हाथ सूजा हुआ था। माँ ही सवेरे दूध लाने जाया करती थीं। तीन–चार दिन बाद जब वे फिर

सवेरे दूध के लिए जा रहीं थीं तो उन्होंने मुझे भी साथ ले लिया था। इन तीन–चार दिनों में न तो माँ कभी मेरे साथ खेली थीं, न ही उन्होंने मुझे कोई कहानी सुनायी थी। माँ के लिए उन दिनों मेरे मन में कैसे भाव आते थे, आज यह बता पाना मुश्किल है। मैं उनसे किसी बात के लिए जिद नहीं करता था। पिताजी मुझे बिल्कुल ही अच्छे नहीं लगते थे। मैं उनसे दूर माँ के ही पास पड़ा रहता। उस दिन सुबह माँ के साथ जाते हुए मैंने ही पहले अंकल को देखा और जोर से बोला–माँ, वह देखो अंकल। लेकिन माँ एकदम चुप रहीं। अंकल भी चुप था। वे लोग पहले की तरह हँसे भी नहीं। पहली बार मुझे अंकल का मिलना अच्छा लगा था। एक चाय की दुकान पर बैठे माँ और अंकल में क्या–क्या बातें हुईं, यह मेरी समझ के बाहर था। वे लोग बहुत धीरे–धीरे बोल भी रहे थे। अक्सर बच्चे सिर्फ अपने मतलब की ही बातें समझ पाते हैं। मुझे बस इतना ही समझ में आया जब अंकल ने माँ से कहा कि इसे क्यों लेते आयी। यह जाकर फिर बता देगा।

माँ जैसे सारी चीजों से बेपरवाह हो चुकी थीं। उन्होंने कहा–अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। माँ की ये आखिरी बातें मुझे हू–ब–हू याद हैं।

घर आकर मैंने अंकल की बात किसी से नहीं बतायी। उस दिन दोपहर तक माँ मुझे हरदम साथ लिये रहीं। खाना खिलाकर उन्होंने मुझे अपने साथ ही सुलाया था। कब चली गयीं? कोई नहीं जान सका। जब मेरी नींद खुली तो मुहल्ले के लोग घर में जुट आये थे। सब लोग थाना–पुलिस बुलाने की बात कह रहे थे। लेकिन पिताजी मुझे लेकर गाँव चले आये। गाँव में सब लोग मुझे ही घेर कर खड़े थे। मेरी समझ में सिर्फ इतना ही आया कि माँ अब कभी नहीं आयेंगी। उसके बाद घर में न तो किसी ने मुझे माँ की तरह कहानियाँ सुनायी और न ही कोई गोदी में चिपका कर सुलाया। पिताजी ही मुझे लेकर सोते थे। मुझे माँ की बहुत याद आती और मैं अक्सर रोया करता था। पिताजी हरदम मुझे साथ लिये रहते। उन्हें माँ की तरह कहानियाँ तो नहीं आती थीं लेकिन मैं जो कुछ पूछता वे बताया करते। इस तरह मैंने पिताजी के साथ बीस साल बिता दिया।

इन बीस सालों में पिताजी ने मुझे वे सारी चीजें दीं जो उनसे संभव हो सकीं। अपनी सीमाओं में उन्होंने मुझे माँ की तरह पाला–पोसा। फिर भी विश्वविद्यालय की इन सड़कों पर टहलता हुआ जब भी मैं अकेला होता हूँ मुझे अपनी माँ की याद आती है। माँ कविताएँ लिखतीं और किताबें पढ़ा करती थीं। मैं भी कहानियाँ लिखने लगा। पिताजी ने खुद कभी पढ़ना पसन्द नहीं किया था, लेकिन उन्होंने मुझे आखिरी तक पढ़ाया। एक तरह से कहूँ तो मैं पिताजी की छाया में माँ के रास्ते बढ़ा। पिताजी चुप भले रहते हैं, लेकिन किसी बात को बहुत देर तक और कभी–कभी कई दिन तक सोचते हैं। वे इतना तो जरूर सोचते होंगे कि मैं माँ के रास्ते जा रहा हूँ। फिर भी उन्होंने मुझे कभी रोका नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि माँ के चले जाने के बाद पिताजी का पुरुष–मन अन्तिम रूप से हार गया। और जब भी मैं ऐसा सोचता तब पिताजी मुझे एक ऐसे सेनापति की तरह लगते हैं, जो भरी–पूरी सेना और अस्त्र–शस्त्र के बावजूद मेरी माँ से हार गया। उनकी आँखों में एक अन्तहीन आकाश घायल और वीरान होकर भर गया, जिसमें कभी कोई पक्षी नहीं उड़ा। पिताजी एक क्षत–विक्षत योद्धा की तरह लगते हैं। घर और गाँव में उनकी किसी से संगति नहीं बैठ सकी और वे अकेले हो गये तो महज इसलिए कि उन्होंने अपनी हार स्वीकार ली थी। जबकि दूसरे लोग अब भी अपने थोथे दंभ में पड़े हुए हैं। और मैं बीस सालों से माँ को खोजता जा रहा हूँ। बस इसलिए नहीं कि उन्हें जीवित पा सकूँ, बल्कि इसलिए भी कि माँ जो एक अवान्तर–कथा की तरह हैं, एक दिन मुख्य कथा की नायिका बनेंगी। पता नहीं मेरा ऐसा सोचना पिताजी को कैसा लगेगा? लेकिन मैं जानता हूँ कि उन्होंने मुझे रोका नहीं है।

❐ **प्रोफेसर देवेन्द्र नाथ सिंह, हिन्दी विभाग में अध्यापक है**

प्रो. पी.के. बाजपेयी

नयी शिक्षा नीति में भारतीयता का विकास

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक उत्थान, आर्थिक समृद्धि एवं राजनैतिक चेतना में प्रखरता, राष्ट्र को वैभवशाली बनाने के लिये, आवश्यक तत्व माने गये है। राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति में शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण पद्धति एवं गुणवत्ता युक्त शिक्षा की समाज के सभी वर्गों तक पहुंच ही विकसित राष्ट्र की ओर ले जाने वाला वाहक तत्व माना गया है। इस दृष्टि से अंग्रेजी शासन द्वारा मैकाले की नीति के अनुरूप अंग्रेजी के माध्यम से औपनिवेशिक साम्राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एवं अंग्रेजी शासन के स्थायित्व को बनाये रखने में सहायक भारतीय मानव शक्ति को शिक्षित करने के उद्देश्य से सन् 1835 में एक शिक्षा व्यवस्था लागू की गयी थी। यही व्यवस्था स्वतन्त्रता प्राप्ति तक कमोबेश उन्ही उद्देश्यों को पूरा करने के लिये देश में लागू रही। यह बात अब सर्व विदित है कि उक्त शिक्षा व्यवस्था ने न सिर्फ औपनिवेशिक विचार का समर्थन करने वाले एक वर्ग को पैदा किया, बल्कि भारतीय उप महाद्वीप में, अंग्रेजों की इस शिक्षा व्यवस्था के पूर्व, अशिक्षित गंवार, असंस्कारित एवं ज्ञान से दूर समाज रहता था एवं उनके अन्दर वास्तविक ज्ञान एवं कौशल का सर्वत्र अभाव था। इस प्रकार का एक वैचारिक प्रभाव भी लगातार बनाने की कोशिश थी। इसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में अपनी संस्कृति के प्रति शर्मिन्दगी, आत्म विश्वास की कमी, विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता जो कि सातत्य रूप से पिछले 5000 साल से ज्यादा समय तक विश्व को ज्ञान की ज्योति से प्रस्फुटित करती रही थी, के बारे में भी पूरी तरह से नकारात्मक सोच पुष्ट हुई ।

इसके साथ ही भारतीय अर्थ व्यवस्था, समाज आधारित शिक्षा व्यवस्था एवं आत्मनिर्भर ग्रामीण जीवन शैली जो कि श्रुति एवं स्मृति के ज्ञान से विकसित हुई जिसमें प्रकृति से तादात्म स्थापित करने की एक नैसेर्गिक जीवन शैली

विकसित कर चुकी थी। उसे वैचारिक षडयंत्रों के तहत नष्ट कर यूरोपीय पुनः जागरण से पैदा हुई विचार क्रान्ति में समाहित कर देश को उसके वास्तविक स्वरूप, इतिहास एवं गौरवपूर्ण अतीत से काटने का हर संभव प्रयास किया गया। औपनिवेशिक विचार से पोषित इतिहास के इतने बड़े–बड़े झूठ इस दौर में गढ़े गये कि सामान्य क्या उच्च शिक्षित वर्ग भी इससे विस्मृत हुये बिना नहीं रहा। इस संबंध में तथ्यात्मक शोध के बाद अनेक विद्धानों ने बहुत कुछ लिखा है एवं पश्चिम के इस षडयंत्र को उजागर किया है। उदाहरण के लिये जब गांधी जी ने सन् 1931 में गोलमेज सम्मेलन के दौरान अंग्रेजी साम्राज्य पर एक शिक्षित एवं सम्पन्न भारत को अशिक्षित निर्बल एवं गरीबी की दुर्दशा से पीड़ित राष्ट्र में परिवर्तित करने का आरोप लगाया, तो अंग्रेज सरकार तिलमिला गयी। वहां उपस्थित प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री हरटोंग ने गांधी जी को इसे प्रमाणित करने की चुनौती दी। गांधी जी ने इसे स्वीकार किया, किन्तु समयाभाव के कारण बात आयी–गयी हो गयी। किन्तु कालान्तर में धर्मपाल जी, जो कि एक गांधी वादी विचारक थे, उन्होंने इग्लैंड में रहकर मैकाले शिक्षण व्यवस्था के पूर्व ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में जो सर्वे किये गये थे, उन अभिलेखों एवं उनमें उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर एक पुस्तकमाला प्रकाशित की, जिसे "Beautiful tree" का नाम दिया गया। इसी का सार–संक्षेप हमारे विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलाधिपति एवं प्रसिद्ध विचारक डॉ. अशोक मोडक जी ने '' धर्मपाल साहित्य–सार संक्षेप'' नाम से संकलित किया है। इसमें जो वास्तविकता का वर्णन है, वह अचम्भित करती है। मोडक जी लिखते है ''धर्मपाल जी ने जो मार्गदर्शन का काम किया है, उससे प्रेरित होकर और अधिक संशोधन होना चाहिए, ऐसी धर्मपाल जी की तीव्र इच्छा है। जिन संदर्भों का उद्धरण इन ग्रन्थो में है, वह केवल पांच प्रतिशत ही है। ऐसे अनेकानेक संदर्भ केन्द्र सरकार व राज्य सरकार के अभिलेखागार में व लंदन में पड़े हुऐ हैं। उनके अध्ययन के लिये महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों को योजना बनानी चाहिये। इस काम के लिये कट्टर अभ्यासकों की, विद्यार्थियों की आवश्यकता है। इन विद्यार्थियों को बल प्रदान करने वाली संरचना हमें खड़ी करनी पड़ेगी। इस दिशा में भरसक प्रयत्न होना चाहिये।'' तो क्या असत्य, कल्पित एवं गढ़े हुए विचारों के आधार पर पश्चिमी प्रगति के मॉडल को हम पर आरोपित कर दिया गया है। इससे आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी की चासनी में पगी हुई ज्ञान की थाली हमारे सामने परोस दी गयी, जिसने व्यक्तिक सृजनात्मकता, मौलिक विचार मथंन एक सामाजिक जीवन पद्धति की अवधारणाओं को समाप्त कर पश्चिम से पैदा हुये परिस्थित जन्य, ज्ञान की लीक पर चलने का हमें आदी बना दिया। यह एक मौलिक प्रश्न है, जिसका उत्तर हमें अभी भी ढूंढ़ना है।

इसका अर्थ यह है कि राजनैतिक स्वत्रंता प्राप्त हुए 73 वर्षों के बाद भी हमारी सोच से यह औपनिवेशिक विचार खत्म होने का नाम ही नही लेता कि पहले ब्रिटेन ओर अब अमेरिका विकसित एवं महात्वपूर्ण है और भारत सिर्फ उनकी तकनीक प्राप्त कर ही आगे बढ़ सकता है। इस पराभूत करने वाली मानसिकता से उबर कर जब तक शिक्षा युवा पीढ़ी में आत्म विश्वास एवं मौलिक ऊर्जा का स्पंदन नहीं करती, तब तक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में यूरापीय संकल्पनाओं को बिना प्रश्न चिन्ह लगाये, जांचे परखे, अध्ययन किये बिना व अपनी सामजिकता के प्रति हीन भावना से ग्रसित होकर, जो भारत की अवधारणा हमें प्रदान की है, उसी के प्रति अनुरक्त रहकर हम आधुनिक भारत को विश्व गुरू बनने का सपना तो देख सकते हैं, किन्तु उसे व्यवहार में परिवर्तित करने का मौलिक मार्ग प्रशस्त कर पायेंगे इसमे संशय है।

यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि अतीत से कटकर कोई भी सभ्यता आगे बढ़ने को कार्य नहीं कर सकती है। जब हमें यह विश्वास हो जाता है कि पूर्व में हमने यह कार्य किया है तो भविष्य में उसे करने का दृढ़ निश्चय आसान हो जाता है। आज से वे सौ साल पहले के भारत पर एक निगाह डालें तो हम पाते है कि सन् 1800 तक भारत विश्व का एक सम्पन्न राष्ट्र था। विश्व व्यापार में हमारा हिस्सा 19 प्रतिशत से अधिक था। कपड़ा उद्योग, जहाज रानी, कृषि, स्थापत्य, सिविल इंजीनियरिंग, पदार्थ विज्ञान, भेषज

शास्त्र, वानिकी जल संसाधन जैसे अनेक ऐसे क्षेत्र थे जिसमें पारम्पारिक ज्ञान आधारित तकनीकें हमारे समाज में विकसित थी, जिनका ज्ञान तक कई सभ्यताओं को नहीं था।

ब्रिटिश सरकार के 1822 में किये गये एक सर्वे के अनुसार बंगाल में एक लाख से अधिक गांवों में स्कूल संचालित थे एवं मद्रास प्रेसीडेन्सी में एक भी गांव विद्यालय रहित नहीं था। बाम्बे प्रेसीडेन्सी में 100 से अधिक आबादी वाले हर गांव में विद्यालय थे। यही नहीं, सामान्य अवधारणा के विपरीत शिक्षकों में सभी वर्ग शामिल थे एवं ब्राह्मण शिक्षकों की सख्या 8 प्रतिशत से 48 प्रतिशत ही थी। शिक्षा मातृभाषा में दी जाती थी। यह सर्वे एक और मान्यता को तोड़ता है, कि वंचित वर्गों को उस समय शिक्षा उपलब्ध नहीं थी। विद्यार्थियों में तथाकथित निम्न वर्णों के विद्यार्थियों की सख्या 78 प्रतिशत तक थी तथा बालिकाओं का बड़ा वर्ग विद्यालयों में जाता था। एक और विशेष बात जो प्राचीन काल से 19 वीं सदी तक (मैकाले माडल के लागू होने तक) सातत्य रूप से यह थी कि शिक्षा समाज आधारित थी यानि शिक्षा का आर्थिक भार समाज वहन करता था तथा शासन का शिक्षा में हस्तक्षेप नगण्य था। शिक्षा सम्पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण के लक्ष्यों को लेकर युगानुकूल परिष्कृत होती रही है। शिक्षा की इस विकास यात्रा में सल्तनत से लेकर मुगल शासन काल में स्वरूप लगभग वही रहा, सिवाय इसके कि इस्लाम की शिक्षा पर आधारित मदरसों ने इस दौरान विस्तार पाया।

अतः 19 वीं सदी तक भारतीय शिक्षा में एक सातत्य, सामाजिक उद्देश्य, व्यक्ति निर्माण के साथ–साथ कौशल विकास एवं वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास साफ दिखता है। जहां भारतीय ज्ञान की प्राचीन ज्ञान परंपरा श्रुति एवं स्मृति आधारित ग्रंथों यथा वेद एवं उनकी उप शाखायें, पुराण ग्रन्थ , उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध साहित्य (त्रिपटिकायें) शास्त्र, दर्शन, स्मृतियां, रामायण, महाभारत आदि को ब्रह्मज्ञान एवं मोक्ष के बड़े उद्देश्य से समाहित कर आधुनिक ज्ञान–विज्ञान एवं तकनीकी में उनकी अनुपयोगिता या सीमित उपयोगिता सिद्ध कर पश्चिमी विद्धानों ने इनको खारिज कर दिया। वहीं गणित, ज्योतिष, न्याय, योग शास्त्र विमानन एवं कौशल के लगभग सभी क्षेत्रों में विकसित हुए तकनीकी आधारित, स्वावलम्बी, प्रकृति से तादात्मय स्थापित कर विकसित कर चुकी एक महान समाज की जीवन शैली को नकार दिया गया। विश्व बन्धुत्व, सामाजिक जीवन में सम्यक रूप से प्राकृतिक संसाधनों की उपयोग करने वाली श्रेष्ठ एवं वैज्ञानिकता युक्त युगानुकूल बदलाव के मूल तत्व से भरी हुई, मानवीय चेतनाओं के भावों से प्रकृति (कार्य–कारण) एवं पुरूष रूपी चेतना के समन्वय के सिद्धान्त को स्थापित कर पूरे विश्व को एक आनन्दमय, शान्तिपूर्ण एक सम्यक जीवन तत्वों की ऊर्जा से संचालित करने वाली शिक्षण व्यवस्था को एक सोची समझी रणनीति के तहत नष्ट किया गया, जिसका एक उदाहरण देना में समीचीन समझता हूँ। ब्रिटिश शासन से पूर्व शिक्षा हेतु राष्ट्र के विभिन्न शासकों के राजस्व का 35 प्रतिशत से 50 प्रतिशत सीधे विद्यालयों/मंदिरों/मठों आदि को जाता था, जिससे विद्यालय आर्थिक रूप से शासन पर निर्भर नहीं थे। अंग्रेज शासन ने इसे 50 प्रतिशत तक ला दिया एवं 1835 के बाद शिक्षा शासन के हाथ में आने के बाद सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा को ही शासकीय अनुदान के अन्तर्गत रखा गया। जिसमें ज्ञान परम्परा का प्रवाह क्षीण होकर विनष्ट होने की कगार पर आ गया ।

दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद भी शिक्षा प्रणाली मुख्यतः औपनिवेशिक सोच के साथ ही आगे बढ़ती रही । इसके बाबजूद कि शिक्षा के क्षेत्र में समय–समय पर अनेक आयोगों ने विचार किया, राधाकृष्णन आयोग (1948), कोठारी आयोग (1968), नयी शिक्षा नीति (1986, 1992) ने इस विषय पर गंभीरता पूर्वक विचार नहीं किया। वर्तमान में लायी गई नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति जिसका कार्यान्वयन शुरू हो रहा हो, ने पहली बार भारत केन्द्रित शिक्षा नीति पर बल देते हुए प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा को पुनर्जीवित कर युगानुकुल रूप से इसे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में जोड़ने की बात की है जो कि क्रांतिकारी कदम है। यह भी सच है कि देश ने शिक्षा के द्वारा आर्थिक,

सामाजिक विकास के कई महत्वपूर्ण सोपान हासिल किये एवं विश्व पटल पर अनेक क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। उच्च शिक्षा, शोध, विकास, एक नवोन्मेष के द्वारा आधुनिक तकनीक के सभी क्षेत्रों में हमारी प्रगति सराहनीय है। रक्षा, नाभिकीय ऊर्जा, बायोतकनीक, सूचना एवं सम्प्रेषण, ऊर्जा, कृषि एवं आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स सहित भेषज उद्योग में भारत दुनिया की एक बड़ी ताकत बनकर उभरा है। लेकिन यह प्रगति हमारी अनन्त जीवन शक्ति तथा जीजिविषा का परिणाम ज्यादा है, एक समाजोपयोगी, भारतीयंता युक्त, मौलिक विचारों के प्रतिपादन एवं विश्व मानवता को दिशा प्रदान करने वाली व्यवस्था का उपक्रम कम। इस बात का प्रमाण अमेरिका एवं यूरोप की इवी लीग विश्व विद्यालयों में अध्ययन के इच्छुक एशिया –अफ्रीका के छात्रों की उपस्थिति एवं प्रति वर्ष बढ़ने वाली संख्या प्रमाणित करती है। एक समय था जब भारत की नालन्दा, तक्षशिला, वैशाली, उदन्तीपुरम, कौतला, उज्जैयनी आदि अनेक विश्वविद्यालयों में एशिया के छात्र कठिन यात्रायें कर अध्ययन करने आते थे, और यह भी कि यूरोप के पुनर्जागरण विशेष रूप से 1530 के अमेरिका की औपनिवेशिक खोज के बाद आधुनिक ज्ञान विज्ञान एवं तकनीकी जिसे वर्तमान विश्व में आर्थिक प्रगति एवं विकास का आधार माना जाता है। आधुनिक विज्ञान की मूल अवधारणाएं तथ्यात्मक शोधों के आधार पर उसी भारतीय ज्ञान परम्पराओं से निकली जो या तो सीधे भारतीय ज्ञान के पश्चिम प्रवाह से हुआ या चीन में पहुंचे संस्कृत के चीनी अनुवाद की गयी पुस्तकों के माध्यम से या फिर अरबों द्वारा भारत से प्राप्त ज्ञान को यूरोप में स्थानान्तरित करने से। इसमें आधुनिक विज्ञान के सर्वश्रेष्ठ क्वान्टम भौतिकी की मुख्य अवधारणा '' ऊर्जा पदार्थ'' का द्वैत भाव हो या गणित की समाकलन या अवकलन की अवधारणा। जंग रहित लोहे की प्रसंस्करण की पद्धति को जानने के लिये तो तत्कालीन ब्रिटेन ने एक वैज्ञानिक दल भारत भेजा था। इसी प्रकार कपड़ा उद्योग का मशीनीकरण जो आधुनिक ब्रिटेन की प्रगति का साक्षी बना, उसकी मूल डिजाइन बंगाल के हथकरघा उद्योग से लिये गये थे।

इन सब उदाहरणों का उद्देश्य भारत के गौरवशाली अतीत का गुणगान नहीं है। न ही इसका उद्देश्य आधुनिक विज्ञान व प्रौद्योगिकी में पश्चिम के योगदान को झुठलाना है। शिक्षा प्रणाली एवं शैक्षणिक व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन का भारतीय ज्ञान परम्परा के उन सार भूत मूल तत्वों को समाहित करने का आशय उस आत्म विश्वास को पुनः समाज में प्रतिष्ठित करना तथा शिक्षा के द्वारा समाज को पुनरूत्थान के मार्ग पर ले जाना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इन परिवर्तनों को सम्यक रूप से स्वीकार करती एवं उन्हें प्रतिष्ठत करती दिखती है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में दो मूलभूत परिवर्तन अपेक्षित है। पहला समाज जीवन के हर क्षेत्र में विशुद्ध भारतीय अवधारणाओं युक्त व्यवस्थाओं की पुनः स्थापना। यह वृहद विषय है, जो एक सीमित लेख में संभव नहीं है। किन्तु एक प्रश्न द्वारा इसकी आवश्यकता प्रतिपादित करने की कोशिश करता हूं। वर्तमान में जिस लोकतन्त्रीय व्यवस्था को राजनीति के धरातल पर स्थापित कर भारत ने अपने आज को एक सांविधिक व्यवस्था दी है। उसका विकास मुख्य रूप से यूरोप को आपस में लगातार युद्ध में उलझे साम्राज्यों को, शान्तिपूर्वक राष्ट्रों के रूप में विकसित करने के लिये किया गया था। पश्चिम की राष्ट्र की अवधारणा भारत के राष्ट्र की सकल्पना से सर्वथा पृथक है। क्यों न राजनैतिक विचारक भारत केन्द्रित, चतुष्पदीय पुरूषार्थ से अनुप्रमाणित, एकात्मता की वैश्विक सिद्धांत से संचालित, भारतीय गणराज्य की व्यवहारिक व्यवस्था पर आधारित भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था की ओर शोध शुरू करते हैं एवं भारतीय प्रजातंत्र का एक माडल विकसित करने का प्रयास करें जिससे बहुमत का विचार न होकर **'सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय''** व्यवस्था कायम हो। एक और बिन्दु, जिस पर कम ही विचार हुआ है, वह है पश्चिम का आर्थिक माडॅल जिसके मूल में पूंजी एवं तकनीकी श्रेष्ठता है तथा जो लगातार वृद्धि की अपेक्षा पर आधारित है। इस व्यवस्था के मूल में एक राष्ट्र के विकसित होने का आधार दूसरे का गरीब होना है। औद्योगिक प्रगति के लिये कहीं न कहीं सस्ते

ससांधन, सस्ती श्रम शक्ति एवं बड़ा खपत वाला बाजार इसके मूल में है।

अतः वैश्विक प्रगति एवं समावेशी विकास के यू.एन.ओ. के लक्ष्यों की पूर्ति इस मॉडल द्वारा संभव ही नही है और यदि ऐसा कभी होता भी है, तो इसके लिये संसाधनों विशेष रूप से प्राकृतिक संसाधनों की इतनी बढ़ी मात्रा लगेगी, जो कि इस पृथ्वी पर उपलब्ध ही नहीं होगी या फिर पर्यावरण असन्तुलन एवं जलवायु परिवर्तन जैसी समस्यायें पैदा होंगी जो कि पृथ्वी के अस्तित्व पर ही संकट ले आयेगी। फिर विकल्प क्या है ? राजीव मल्होत्रा जैसे विद्वान देशज ज्ञान को शोध द्वारा बढ़ावा देकर इसको एक विकल्प मानते हैं। इस क्षेत्र में कोरोना काल में आयुर्वेद एवं योग जैसे पारम्परिक ज्ञान की विश्व व्यापी प्रतिष्ठा इसका एक उदाहरण है। एक अन्य क्षेत्र जहां इसकी संभावनाएं प्रबल बनी है, वह है जल सरंक्षण एवं जल संसाधनों का वैकल्पिक प्रबंधन। आज चीन द्वारा हिमालय के क्षेत्र में जिस पैमानों पर बड़े बांध बनाकर पूरे पर्यावरण को खतरा पैदा किया जा रहा है या जिस तरह से नेपाल आदि देशों में प्राकृतिक संसाधनों हेतु पहाड़ी क्षेत्रों में उत्खनन का कार्य हो रहा है उससे नदियों के मार्ग परिवर्तन ग्लेशियरों के पिघलने की गति जैसे संवेदनशील पर्यावरणीय पैमानों को असन्तुलित किया है। हाल ही में सेटेलाइट्स सर्वे से यह ज्ञात हुआ है कि भारत में 11 लाख से अधिक मानव निर्मित जल संरक्षण की इकाइयां प्राचीन काल में विकसित की गई थी, जिनमें 250 वर्ग कि.मी. तक की झील भी शामिल थी। यह प्राकृतिक रूप से सुरक्षित संरचनाएं बड़े बांधों की तरह पर्यावरण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करती थी। अतः आज आवश्यक है कि शिक्षा में ऐसे तत्व शामिल किये जाएं, जो व्यक्ति की सिर्फ स्वयं केन्द्रित सोचने की जगह विचार केन्द्रित व्यक्ति से समिष्टि तक सोच को बढ़ाने की दिशा में प्रेरित करे। शोध की दिशा देशज हो, विविधता का सम्मान हो, सोच में परिग्रह हो, सम्यकता एवं विश्व शान्ति की ओर प्रेरित करने वाला हो। गीता के तेरहवें अध्याय में वर्णित मानव का स्वरूप साक्षी भाव से देखने वाला, उपयन्ता एवं सामाजिक वरण को भरण करने वाला भर्ता एवं उसके परिणाम स्वरूप पैदा हुए को ग्रहण करने वाला महेश्वर बनाने वाला हो।

आशा है भारत केन्द्रित भारत बोध को बढ़ाने वाली, भारतीय ज्ञान परम्परा से पुष्ट, भविष्योन्मुखी आधुनिक ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रों में शोध, अनुसंधान एवं प्रबोधन से विकसित नया भारत इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति को क्रियान्वित कर ज्ञान की विश्व शक्ति के रूप में निकट भविष्य में उभरेगा और रचनात्मक सर्व समावेशी विकसित कर विश्व को नेतृत्व प्रदान करेगा।

❐ **आचार्य एवं विभागाध्यक्ष,** शुद्ध एवं अनुप्रयुक्त भौतिकी

डॉ. हरीश कुमार

समय प्रबंधन : एक नितान्त आवश्यक कार्य

आमुख :

आप आमतौर पर बहुत से लोगों को कहते हुए सुनेंगे कि उनके पास समय का अभाव है, उन्हें समय नहीं मिल पाता, उनका काम ही समाप्त नहीं हो पाता उन्हें हर समय व्यस्तता रहती है। यदि हम उपरोक्त कथनों पर गौर करें तो पायेंगे कि जो लोग ऐसा कहते हैं उनके पास वास्तव में समय का अभाव नहीं है, बल्कि वे समय का समुचित प्रबंधन करने में असफल रहते हैं।

एक साल में 12 माह, एक माह में 4 सप्ताह, एक सप्ताह में 7 दिन, एक दिन में 24 घंटे, एक घंटे में 60 मिनट एवं एक मिनट में 60 सेकण्ड होते हे। प्रस्तुत आकड़ों के प्रकाश में यह कहा जाता है कि व्यक्ति के पास समय का कतई अभाव नहीं है बल्कि आवश्यकता है कि उपलब्ध समय का समुचित उपयोग सम्पूर्ण क्षमता के साथ किया जाए।

समय की महत्ता

एक कहावत है कि मैने समय को बर्बाद किया अब समय मुझे बर्बाद कर रही है। समय अमूल्य है, समय धन है, समय सीमित है, खोया समय वापस लौट कर नहीं आता, समय गतिमान है, उपरोक्त कथन इस बात की ओर इशारा करते हैं कि समय का सदुपयोग आवश्यक है एवं उसके लिये प्रभावी समय प्रबंधन की आवश्यकता है। यदि आप समय का सही उपयोग नहीं कर पा रहे तो आपकी उन्नति या तो धीमी पड़ जाती है या फिर रूक जाती है। आप जीवन का भरपूर आनंद नहीं ले पाते हैं। आप समस्याओं से ग्रसित होने लगते हैं, क्योंकि आप निजी सामाजिक एवं व्यावसायिक जीवन में सन्तुलन नहीं बना पाते। आप तनाव ग्रस्त होने लगते हैं तथा मानव संबंधो को सुदृढ़ बनाये नहीं रख पाते।

बकौल शायर मंजर भोपालीः–

जरा सा वक्त गुजर जाये गफलतों में अगर,
तो अच्छे अच्छों को फिर हाथ मलना पड़ता है ।

कमजोर समय प्रबंधन के लक्षण

1. असंगठित (कार्य पर विचार दोनों में)
2. कार्यालयीन कार्य को घर लाने तथा गृहकार्य को कार्यालय ले जाने की प्रवृत्ति।
3. व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक उद्देश्येां एवं प्राथमिकताओं के प्रति उदासीनता का भाव।
4. तनाव ग्रस्तता।
5. उतावले एवं तर्कहीन नि लेना।
6. सारे काम स्वयं करने की दृढ़ता।
7. कार्य को अंतिम तिथि तय पूरी करने की अक्षमता।
8. हमेशा समय अभाव की शिकायत करना एवं बहाना बनाना।
9. अति व्यस्तता की बात करना।
10. निर्णयों का अनावश्यक रूप से स्थगन करना।

एक अच्छे समय प्रबंधन की विशेषताएं

1. विचारों की स्पष्ता
2. निर्णयता
3. तन्मयता/एकाग्रता
4. उच्च कोटि की स्मरण शक्ति
5. दृढ़ निश्चय
6. भावात्मक समझ/बुद्धिमत्ता
7. सुनियोजित कार्य शैली
8. समय का पालन
9. वस्तुनिष्ठता
10. तार्किकता।

कारगर समय प्रबंधन के उपाय

1. कई कार्य एक साथ करने की आदत छोड़िये।
2. समय नष्ट करने वाले कारकों का पहचानिये एवं उन्हें नियंत्रित कीजिये।
3. ऐसे कार्य जो अधिक महत्वपूर्ण न हो अपने अधीनस्थों को सौंप दीजिये।
4. अपने उद्देश्यों एवं प्राथमिकताओं को लिखिये एवं उनमें स्पष्टता लाईये।
5. सृजनशील बनिये एवं समस्याओं को सुलझाने देते हेतु एक से अधिक समाधानों का सृजन कीजिये।
6. आग्रही बनिये एवं कार्य पूर्ण करने की सतत प्रयास कीजिये।
7. दिनचर्या के तहत कार्य कीजिये।
8. कार्य के प्रति वचनबद्धता एवं लगन का भाव रखिए।
9. समय प्रबंधन पर साहित्य पढ़िये एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लीजिये।
10. कार्य प्रणालियों को विकसित करिए।
11. कार्य को समय की सीमाओं में रखिए।
12. कैलेण्डर को सदैव आप–पास रखिए।
13. दैनंदिनी बनाईये एवं उसमें रोज़मर्रा के कार्यो को तीन श्रेणियों में विभाजित कीजिए –
    (अ) अति आवश्यक कार्य
    (ब) आवश्यक कार्य
    (स) कम आवश्यक कार्य
14. 'ना' कहना सीखिए क्योंकि आप न तो प्रत्येक कार्य करने में सक्षम है नहीं आप हरेक व्यक्ति की मदद कर पायेंगे।
15. अनावश्यक कार्यालयीन राजनीति में न पड़िये।

निष्कर्ष

उचित समय प्रबंधन समय की मांग हैं। इतिहास इस बात का गवाह रहा है कि जिन लोगों ने भी समय के मूल्य को समय रहते नहीं पहचाना, वे कभी अपने जीवन के अस्तित्व के औचित्य सिद्ध करने में समर्थ नहीं रहे। ऐसे बहुत से कारक हैं जो आपके समय को अनावश्यक रूप से नष्ट करते रहते हैं। आप शीघ्र इन कारकों को पहचानें एवं उन्हें नियंत्रित करें। समय प्रबंधन आपके सुखी जीवन का आधार है एवं उसको गति प्रदान करती है।

सार –

नकारी जिन्होंने भी वक्त की ताकत, वो तबाह हो गये,
जो पहचान गये ताकत वक्त की, वो शाह हो गये।

❒ **आचार्य,** प्रबंध अध्ययन

डॉ. गौरी त्रिपाठी

उम्मीदों की गोधूलि में :
प्रमथ्यू गाथा

भग्न स्तूपों के शिलालेख

मिथक इतिहास नहीं होते। कुछ लोग इतिहास को समझने के लिए मिथकों का उपयोग करते हुए उनकी तरह तरह से व्याख्याएं करते हैं, इसमें उन्हें भले ही आंशिक सफलता मिलती रही हो तब भी इसमें अनर्थ की गुंजाइश ज्यादा रह सकती है, क्योंकि मिथक के स्रोत कभी भी विशुद्ध इतिहास न होते। वे लोक आकांक्षा को लेकर रचे गये समष्टि की सृजनशीलता होते हैं, जो इतिहास को रचते हैं। मात्र उनके ऐतिहासिक संदर्भ होते हैं। मिथक कभी भी इतिहास की तरह मात्र एक कालखण्ड में भी घटित न होते, न प्रचलित साहित्य की तरह किसी एक स्थान या एक विशेष समय में रचे जाते हैं। कहा जा सकता है कि चाहे इतिहास की कोई घटना विशेष हो या कोई भी साहित्य उसकी तुलना में मिथक की अनुगूंज बहुत दूर तक, एक तरह से कालातीत होती है। पाठ की अनंत संभावना से भरे मिथक व्यवहृत अर्थों में साहित्य कोष होते हैं इनके भीतर कई संस्कृतियां, कई देशों की सीमाओं आदि का अतिक्रमण भी हो जाया करता है। सभ्यताओं तक के विमर्श इन मिथकों में संभव होते रहते हैं। यही कारण है कि समकालीन जीवन संदर्भों के चित्रण के लिए ये मिथक यथार्थ से भी ज्यादा साहित्य और कला का प्रभावी आधार बनते रहे हैं। इन मिथकों के कई स्रोत होते हैं। ऐतिहासिक, पौराणिक कथाओं से जुड़े पात्र। स्रोत की व्यापकता के आधार पर ही मिथकों का प्रभाव भी बढ़ता घटता है।

समष्टि की सृजन शीलता

कामायनी अपने आप में एक मिथक काव्य है, जबकि उसके सारे चरित्र मात्र प्रतीक भर बन कर रह गए। कौन सा मामूली पात्र भी मिथक बन जाएगा और कौन बहुत ज्यादा प्रभावशाली होने के बावजूद मिथक नहीं बन

पाएगा, इसके ढेर सारे कारण हैं। साहित्यिक जमात के भीतर शरदचंद्र की एक बेहद मामूली प्रेम कहानी का पात्र ''**देवदास**'' मिथक बन जाता है। प्रेमचंद की कहानी कफन के ''**घीसू–माधव**'' एक विशेष स्वभाव के लिए मिथकों की तरह प्रयुक्त होने लगे, जबकि महाकाव्यात्मक कृति कहे जाने वाले गोदान के प्रबुद्ध पात्र मालती या मेहता व्यक्ति चरित्र भर बनकर रह गये। मूल रचना के वृत्तांत जैसे–जैसे क्षीण होते जाते है, मिथक की रचनात्मक संभावना में विस्तार होने लगता है। मूल वृत्तांत के बचे रहने तक मिथकों की रचनात्मक संभावना लगभग नगण्य होती है। मिथक के आस–पास एक ऐसी फेंटेसी होती है, जिसमें यथार्थ के कई रूप अलग–अलग समयों में देखे जा सकते हैं। किसी भी वृत्तांत का पात्र जब अपनी स्वतंत्र पहचान बनाता हुआ मूल वृत्तांत के कथा तत्वों से मुक्त हो जाता है तब उसके मिथक बनने की प्रक्रिया पूरी होती है।

संशय की एक रात और कुछ डरावने स्वप्न

अचानक ऐसा क्या होता है कि आजादी के तत्काल बाद कुछ बेहद महत्वपूर्ण काव्य रचे जाते हैं, और इनके लिए मिथकों का सहारा लिया जाता है। गिरिजा कुमार माथुर ने एक नाटक लिखा था– ''पहला राजा''। रामधारी सिंह **दिनकर** ने युद्ध और हिंसा की आलोचना में **''कुरूक्षेत्र''** लिखा। **रश्मिरथी** का प्रसंग थोड़ा भिन्न है, मैं यहां **उर्वशी** और उसके निहितार्थों का भी जिक्र नहीं करूंगी, क्योंकि बात का सिरा छूट जाएगा। लेकिन आप देखें कि किस तरह मिथकीय साहित्य का भरा पूरा परिदृश्य उस समय बन रहा था। धर्मवीर भारती ने लगभग उसी कुरूक्षेत्र की पृष्ठभूमि पर **अंधायुग** जैसी कालजयी कृति की रचना की थी। यह सब उसी हिन्दी में हो रहा था, जहॉ प्रेमचंद ने अभी थोड़े दिन पहले यथार्थवाद की एक बड़ी परंपरा खड़ी की थी। और यह सिर्फ हिंदी में ही नहीं, बांग्ला में प्रमनाथ विशी ने **पूर्णावतार** विष्णु दे ने **स्मृति सत्ता भविष्यत** लिखा तो मराठी में शिवाजी सावंत में कर्ण को लेकर **मृत्यंजय** जैसा उपन्यास लिखा।

मध्यवर्ग : अंधेरे बन्द कमरे

आजादी के दस साल बाद लगभग इसी दौर में धर्मवीर भारती ने एक लंबी कविता लिखी **प्रमथ्यू गाथा**। ग्रीक मैथालाजी के अतिपरिचित नायक प्रमथ्यू को लेकर रोमैंटिक दौर के महत्वपूर्ण कवि शेली ने भी **प्रोमेथिस अनवाउंड** कविता लिखी थी। मैंने उस कविता को पढ़ा नहीं, सिर्फ उसके बारे में सुनी भर हूँ। वह भी इस तरह कि यूनान का यह मिथकीय चरित्र मार्क्स को भी बहुत प्रभावित और आकर्षित कर रहा था। उन्होंने उसे सर्वहारा क्रांति के नायक के रूप में बताया था। नायक जो इतिहास की गति को मोड़ते हैं, खुद इतिहास अपने उन नायकों के साथ कितना और कैसा बर्बर सलूक करता है, धर्मवीर भारती की इस कविता में इसे बहुत मार्मिक ढंग से दिखाया गया है। जब आग कहती है कि –

''वे सब स्वार्थी, विलासी थे, कायर थे
जिनके महलों में मैं बंदी थी
माथे से अपने लगा कर प्रमथ्यू ने
फेंक दिया फिर मुझकों इस कायरों के बीच
मुझसे ये सुबह शाम चूल्हा सुलगाएँगे
सोना गलायेंगे
जरा सा मौका पाते ही
अपने पड़ोसी का घर फूंकेंगे।''

नाटकीयता के शिल्पविधान में लिखी गयी इस लंबी कविता में कुल पांच चरित्र हैं। खुद प्रमथ्यू, ड्यूपीटर, गुरू रूप में गिद्ध, आग और तमाशबीन बने धरतीवासी जन सामान्य। हम सब चाहें तो इसी जन–सामान्य में खुद को देख सकते हैं। हमी लोगों की तरह मध्यवर्गीय सोच से भरे जन–सामान्य जो बगैर किसी लाज शर्म के एकदम आसानी से कह देता है–

''अग्नि जिसे लाना था ले आया
अग्नि नही थी जब
तब हमने नही कहा
कि जाओ अग्नि ले आओ
और अग्नि जब आयी
हमने नहीं कहा कि अग्नि नहीं लेंगे हम।''

आग चुराने या देवताओं के राजा ड्यूपीटर से आग छीन कर लाने के जुर्म में प्रमथ्यू पकड़ लिया जाता है। उसे बूढ़ा

गिद्ध स्वर्ग में, जहां आग रखी होती है, उसका पता बताता है, और उस आग को लाने के लिए प्रमथ्यू को प्रेरित भी करता है। एक तरह से वह प्रमथ्यू का मार्गदर्शक गुरू है।

नालंदा पर गिद्ध

एक ऐसा गुरू जिसका सारा ज्ञान चतुराई बन गया है। आइये देखें इस आशारामी ''गुरू–गिद्ध'' को और सुनें कि वह जख्मी प्रमथ्यू से किस ढीठ और बेशर्म अंदाज में कहता है –

''अब मैं बूढ़ा हूँ
मेरे थके हैं पंख
सिवाय तुम्हारे इन सबल पुष्ट कंधों के
और कहां बैंठू मैं
कटु मत हो
मेरे थे पंख और मैंने देखी थी अग्नि
मैं भी ला सकता था।''

अभाव, अज्ञानता, भूखमरी और विपन्नता के अंधेरे में डूबी धरती और उसके बाशिन्दों के लिए आग रोशनी, प्रतिरोध की शक्ति, साहस और कई तरह के आत्मगौरव का प्रतीक भी है। प्रमथ्यू का सपना है कि इस आग को पाकर धरती की शक्ल बदल जाएगी और यह स्वर्ग से भी सुंदर होगी। अपनी एक लंबी कविता में **राजेश जोशी** भी इस घटना का बयान करते हुए लिखते हैं कि–

''पहाड़ की चोटी पर
जंजीरों से जकड़ा प्रमथ्यू चिल्लाता है
समुद्र की बेटी मुझे एक पुत्र दो
जे ले जा सके आग को आदमी तक।''

शेली से लेकर **राजेश जोशी** तक प्रमथ्यू का मूल चरित्र एक ही है, पर उसके अर्थ संदर्भ बदल जाते हैं। धर्मवीर भारती ने अपनी कविता में धरती वासियों को तमाशबीन के रूप में चित्रित किया है।

जहिर है आजादी के बाद का पहला दशक, जब यह कविता लिखी गयी थी, तब सर्वहारा क्रांति का आशावादी स्वर हिंदी कविता में इतना वेगवान था कि किसी भी तरह का लेकिन, किन्तु, परन्तु, जैसा शब्द विसंवादी मानकर अनसुना कर दिया जाता था। क्योकि वह ऐसा दौर था जब मुक्तिबोध इसी आग विहीन जनता में आत्मालोचन और क्रांतिकारी संघर्षों के बल पर महान क्रांति का स्वप्न देख रहे थे। अभिव्यक्ति के खतरे उठा रहे थे। ब्रेख्त का नाटक **लाइफ आफ गैलीलियो** में कभी गौलिलियो के शिष्य आंद्रिया ने कहा था कि– ''**कितना दुर्भाग्यशाली है वह देश जिसका कोई नायक नहीं होता।**'' उसके उत्तर में गैलीलियो कहता है कि– ''**दुर्भाग्यशाली है वह देश जो सिर्फ नायकों के बल पर जीता है।**'' तो जिस समय यह कविता धर्मवीर भारती ने लिखी थी, वह नायकों का युग नहीं था। मुक्तिबोध की कविताओं में सामान्य जन ही क्रांति के नायक होते थे। सामान्य जन कौन ? निस्संकोच मध्यवर्ग। जिसे सर्वहारा क्रांति का पूरा का पूरा दर्शन कंठस्थ था। वह गुरू था। वह ऐसा गुरू था जो भारती जी की कविता में गिद्ध की शक्ल में दिखाई देता है। इस आधी सदी में जब इतिहास द्वारा सबकी भूमिकाएं स्पष्ट हो चुकी हैं तब एक प्रश्न तो जरूर बनता है कि मध्यवर्ग के बारे में मुक्तिबोध की दृष्टि सही थी, या धर्मवीर भारती की? ड्यूपीटर ने प्रमथ्यू को जंजीर से जकड़ने के बाद वरदान दे रखा कि गिद्ध तुम्हारे हृदय का जितना भी मांस खायेगा, उतना हृतपिण्ड दुबारा भर जाएगा। अब यह कितना वरदान है, कितना श्राप आप सब इसे समझते रहिये । अंधेरे की सत्ता को चुनौती देने के अपराध में ड्यूपीटर प्रमथ्यू के लिए कहता है–

''साहस नहीं था
मैंने जो नक्शा बनाया था
मानव अस्तित्व का
उसमें थी दासता, विनय थी, कायरता थी
अंधेरा था
यह जो इस व्यक्ति ने
अंधेरे को देकर चुनौती दी
दुस्साहस किया
यह मेरी सत्ता का प्रथम अनादर था।''

तब तमाशबीन जन सामान्य उसे आश्वस्त करते हुए कह

रहा है–

''मूरख नहीं हैं जी
हम क्यों उठाते सिर
यह जो हम अब भी खड़े हैं
प्रमथ्यू के आस–पास
इसलिए नहीं कि हम कुछ
इसके अनुगामी हैं
हम तमाशबीन हैं।''

बहरहाल, पहाड़ की चोटी पर जंजीरों से जकड़ा जख्मी, क्षत विक्षत, लहूलुहान प्रमथ्यू असह्य पीड़ा से तड़प रहा है। वह न जीता है, न मरता है। **मुगले आजम** में अकबर कहता है न कि–**अनारकली! सलीम तुम्हें मरने नहीं देगा, और मैं तुम्हें जीने नहीं दूंगा।** प्रमथ्यू छटपटा रहा है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह कि उसके गुरू, जिसने उसे आग लाने के लिए प्रेरित किया था वही गिद्ध उसके हृदय पिंड को नोच नोचकर खा रहा है और ऊपर से यह भी कह रहा है कि तुम कटु न बनो। यह है ग्रीक ट्रेजडी। भारत में सुखांत की परंपरा है। यहां के गुरू होते तो कोई न कोई रास्ता निकाल लेते। कोई न कोई जुगाड़ टेक्नालाजी जरूर काम कर जाती। लेकिन यह रोम का ''गुरू–गिद्ध'' तो मांस खाकर पेट भर रहा है। जिन्होंने वर्ग संघर्ष के पाठ पढ़ाये, उस पर किताबें लिखी, वे सब आज विश्वविद्यालयों में बड़े–बड़े प्रोफेसर बन गए। संसद में चले गए। और जो आग चुराते पकड़ लिये गए, वे आतंकवादी है। हमसब रोज–रोज अखबारों में उनकी मनोहारी खबरें पढ़ते हैं। उनकी यातनाएं हमारे लिए सबसे मुफीद मनोरंजन हैं। प्रमथ्यू के संघर्ष और स्वप्न सब डूब गए। उनका हृतपिण्ड नोचा जा रहा है। मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता **अंधेरे में** जब शहर में मार्शल लॉ लग जाता है तो काव्यनायक इसके लिए खुद को दोषी समझता है। उसे लगता है मानो मेरे ही कारण यह दुर्घटना घटना घटित हुई। इस उत्तर आधुनिक युग में सब तमाशबीन हैं। जनता की बातें सुनिए, वह क्या कह रही है –

''हम हैं तमाशबीन
देख रहे हैं कैसे प्रमथ्यू जकड़ा है शिलाओं से
कैसे उसके कंधे पर बैठा हुआ गिद्ध
नोच–नोच खाता है उसका हृदय पिंड
और रात ढलते–ढलते कैसे
सारा घाव फिर से पुर जाता है।
अग्नि नहीं थी जब
तब हमने नहीं कहा
कि जाओ अग्नि ले आओ तुम
और अग्नि जब आयी
हमने नहीं कहा कि अग्नि नहीं लेंगे हम ''

संभावनाओं का उपसंहार

यह है लंबी कविता **प्रमथ्यू गाथा**, जिसे धर्मवीर भारती ने आजादी के लगभग एक दशक बाद लिखी थी। वह हिंदी कविता का दूसरा दौर था। मध्यवर्ग से ढेरों उम्मीदें थी। वह बात बे–बात आग की ही बात करता था–

''मैं आग चाहता हूँ
आवाज चाहता हूँ
प्यार चाहता हूँ
हथियार चाहता हूँ।''

आज जबकि आजादी की लड़ाई का सपना पाले हुए मध्यवर्ग रातो–रात विश्व बाजार की चमकीली पैकिंगों में घुसते ही अचानक उपभोक्ता वर्ग में तब्दील हो गया तो ऐसे में अपने लिखे जाने के लगभग पांच दशक बाद आज यह कविता इस मध्य वर्ग को समझने में ज्यादा मदद देती है। वह आज एक साथ दोनों रूपों में दिखाई देता है, तमाशबीन के रूप में भी और **गुरू–गिद्ध** के रूप में भी। हम चाहे जहां देखें, रोज–रोज हमारे आसपास यह घटित हो रहा है।

❐ **सह–प्राध्यापक,** हिंदी

पुरस्कृत

चन्द्रकली

ईमानदारी : एक जीवन शैली

प्रस्तावना

ईमानदारी मनुष्य का वह गुण है, जो उसे एक श्रेष्ठ व सम्मान जनक जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। ईमानदारी से एक अच्छे समाज का निर्माण होगा और देश में भ्रष्टाचार भी दूर होगा ।

ईमानदार व्यक्ति को समाज में बहुत सम्मान मिलता है। लेकिन ईमानदारी से जीवन जीने के लिए उनको बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वर्तमान समाज बुराई और झूठ से भरा हुआ है। यदि व्यक्ति को ईमानदारी से जीवन जीना है, तो इन्ही बुराई को दूर करने के लिए ईमानदारी के रास्ता पर चलना होगा, जो कांटे में चलने के बराबर होगा। ईमानदारी वह गुण है, जो व्यक्ति की पहचान उसका चरित्र, उसकी मनोदशा को दिखाता है। ईमानदार होना ही अपने आप में एक कठिन कार्य है। ईमानदारी प्रत्येक व्यक्ति में होना चाहिए। चाहे वह किसी भी व्यवसाय में हो या समाज का सामान्य नागरिक। यदि हमारी जीवन शैली में ईमानदारी का गुण आ गया, तो फिर देश और व्यक्ति का विकास होगा। ईमानदार व्यक्ति से सभी डरते भी है, क्योंकि उसके पास सबसे बड़ा गुण है वह है ईमानदारी का और एक ईमानदारी व्यक्ति की पहचान हम आसानी से कर सकते हैं। ईमानदार व्यक्ति सभी काम को नियम से और समय से ही करता है। उनको सभी चीजों के मूल्यों के बारे पता होता है।

ईमानदारी, व्यक्ति में मूल्यों के विकास में भी सहायक होती है। हम बच्चों में स्कूल के माध्यम से, घर के माध्यम से मूल्यों का विकास कर सकते है।

एक शिक्षक को भी ईमानदार होना अति आवश्यक है। यदि शिक्षक ईमानदार होगा, तो उसका प्रभाव बच्चों पर भी दिखेगा। जो बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक होगा।

ईमानदारी से व्यक्ति के जीवन में सफलता मिलती है, हालांकि थोड़ी देर लगती है। परन्तु जब मिलेगा तो उसको हमेशा अपने कार्य को करने में आनन्द मिलेगा। अच्छे समाज के निर्माण के लिए भी व्यक्ति में ईमानदारी का गुण होना चाहिए। क्योंकि हम सभी लोग समाज में ही रहते है, और हमारा सामाजीकरण समाज में ही होता है, और समाज ही हमें बहुत सारे मूल्यों के बारे में सिखाता है हम समाज से ही बहुत सारी चीजों को ग्रहण करते हैं, इसलिए हमे हमेशा अच्छे समाज के निर्माण के लिए अपना योगदान देना चाहिए और हमें अपने स्वयं के जीवन में ईमानदारी का जीवन जीने का संकल्प करना चाहिए।

ईमानदारी देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि देश के व्यक्ति में ईमानदारी का गुण विकसित होगा, तो देश से भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं को दूर किया जा सकता है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार को ईमानदारी से खत्म किया जा सकता है। जीवन में व्यक्ति हर समय झूठ का सहारा लेकर अपना काम निकाल लेता है, लेकिन वह यह कभी नही सोचता है कि उसके इस झूठ से कितने लोगों का बुरा होगा और कितने लोग उसे इस झूठ के वजह से कोसते रहेंगे। इसीलिए हमें यह सोचना ही नहीं कि झूठ बोलकर अपना अच्छा कर ले रहे हैं ।

एक अच्छे समाज व देश के निर्माण के लिए सभी व्यक्तियों को ईमानदारी पूर्वक जीवन जीने की आदत डालनी होगी। यदि अभी से लोग ईमानदारी से जीवन जियेंगे तो यह भविष्य के लिए भी बहुत अच्छा संदेश होगा। व्यक्ति को भले जीवन में थोड़ी बहुत समस्या का सामना करना पड़े, परन्तु अपने जीवन में हमेशा सत्य के रास्ते पर चलने का प्रयास निरन्तर करते रहना चाहिए।

निष्कर्ष

ईमानदारी व्यक्ति की पहचान है। उसे अपना अच्छा संबंध स्थापित करने में भी मदद करती है। ईमानदारी व्यक्ति की सबसे अच्छी नीति है और उसकी पहचान भी है। इसलिए हमें हमेशा ही अपने स्वयं के प्रति ईमानदारी का गुण रखना चाहिए। यह देश और समाज के निर्माण में योगदान होगा।

❐ **छात्रा,** एम.एड.

पुरस्कृत

आकृति ताम्रकार

ईमानदारी : एक जीवन शैली

प्रस्तावना :

ईमानदारी एक नैतिक गुण है । जिसे व्यक्ति अपनी पहचान के रूप में उभारता है। ईमानदारी की मिसाल हेतु इतिहास में कई महान उदाहरण है, जिन्होंने अपने कर्तव्य द्वारा या अपनी रचनाओं द्वारा अभी तक ईमानदारी की प्रासंगिकता की पुष्टि करते हैं। महात्मा गांधी, राजा हरीशचन्द्र आदि महापुरूषों ने पहले ही ईमानदारी के द्वारा विश्व में अपने नैतिक गुणों के बल पर प्रतिष्ठा पाई है। ईमानदारी व्यक्ति का एक सर्वोपरि गुण होता है, जो व्यक्ति को एक अच्छा जीवन जीने हेतु प्रेरित करता है ।

ईमानदारी का मतलब

ईमानदारी कोई वस्तु नहीं है, जिसे खरीदा या बेचा जा सके। ईमानदारी वह अनमोल गुण है जिसे बचपन से किसी व्यक्ति में उपजाया जाता है । ईमानदारी का अर्थ है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन के हर आयाम में कितना ईमानदार या नेक है। ईमानदारी का गुण कई गुणों को उभारता है।

जैसे– सच्चाई, नेकी, परोपकार, आपसी प्रेस आदि ईमानदारी के लक्षण हैं ताकि व्यक्ति बोलने में, कार्यों में, हर पहलु पर मन–वचन–कर्म से नेक व ईमानदार रहे । ईमानदारी के एक–एक तिनके व्यक्ति को तराश कर उसे मन से स्वच्छ बनाती है। श्री राम शर्मा 'आचार्य' ने कहा था– ''ईमानदार मनुष्य स्पष्टभाषी होता है अपनी बात रखने हेतु उसे किसी नमक, मिर्च की जरूरत नहीं होती।''

जीवन में ईमानदारी

हमारे जीवन में ईमानदारी का अत्यधिक महत्व है। जैसे एक छोटा बच्चा तुरंत अपने मन की बातों को रखता है, बिना किसी भेदभाव के ईमानदारी से बोल देता है और हमे वह लुभाता है यही है, ईमानदारी जो लोगों को मोह लेती है। ईमानदारी ही एक ऐसा गुण है जो व्यक्ति को लोगों से जुड़ने का मौका देती है, संबंधों में विश्वास पैदा करती है, किसी भी रिश्तों में गोंद लगाकर प्रगाढ़ता प्रदान करती है। अतः ईमानदारी को एक जिम्मेदारी के रूप में अपने जीवन में आत्मसात करना चाहिए। इसे अपने जीवन में ढालना चाहिए।

महान बेंजामिन फ्रैंकलिन ने कहा है कि ''ईमानदारी एक सर्वश्रेष्ठ नीति है।'' ईमानदारी की महत्ता आधुनिक जीवन में हर जगह है, चाहे वह राजनैतिक हो, सांस्कृतिक हो आर्थिक हो या फिर सामाजिक। चाणक्य नीति के रचयिता चाणक्य से जब कोई सरकारी दफ्तर का व्यक्ति मिलने आता तो, वे सरकारी खर्चे का तेल दीप जलाते और जब कोई व्यक्तिगत रूप से मिलने आता तो वे अपने खर्चे का तेल दीप जलाकर मिलते। इस प्रकार वे अपनी ईमानदारी का परिचय देते हुए महान साबित हुए । थामस जैफरेंसन ने कहा है'' बुद्धिमानी की किताब में ईमानदारी पहला पाठ होता है।'' इसी प्रकार श्री राम शर्मा आचार्य की रचना ''ईमानदारी का परित्याग ना करें।'' में किसी व्यक्ति को ईमानदारी का क्या फल मिलता है, उसे इंगित किया गया है ।

ईमानदारी की प्रासंगिकता

प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं द्वारा बखूबी ईमानदारी की प्रासंगिकता आधुनिक जीवन काल में रखी है– ''ईमानदारी मनुष्य की प्रतिष्ठा व चरित्र को इंगित करती है।'' नमक का दरोगा रचना द्वारा यह पुष्ट होता है । ईमानदारी की जरूरत हर किसी को है यही वह शक्ति है जो भ्रष्टाचार को मिटा सकती है । ईमानदारी पर पुरातन काल से कोई महावरे व लोकोक्ति भी हैं जैसे ''ईमान कभी बिक नही सकता''आदि। ईमानदारी का उदाहरण एक चोर का साथी भी हो सकता है। यदि चोर का साथी ईमानदार न हो, तो चोरी नहीं होगी। चाणक्य ने कहा था– ''ईमानदारी अधिक नहीं होनी चाहिए, क्योंकि सीधे वृक्ष व व्यक्ति पहले काटे जाते है।''

उपसंहार

ईमानदारी को एक जिम्मेदारी के रूप में लेना चाहिए। यह दावा नहीं किया जा सकता कौन कितना ईमानदार है अतः इसे जिम्मेदारी के रूप में बचपन से ही उपजाना चाहिए। पाउलो काउलिन की किताब में इसका बखूबी वर्णन है। ईमानदारी हेतु सरकार द्वारा सर्तकता आयोग की स्थापना फरवरी 1964 में की गई, जिससे भ्रष्टाचार का निवारण ईमानदारी के शस्त्र से हो सके। ईमानदारी का बीज हर दिल में बोना चाहिए। जिससे भारत देश व विश्व सशक्त बने। ईमानदारी को जुबान की जरूरत नहीं होती वह स्वयं बोलती है, ईमानदारी से अपनी बात रखता है उसे कोई तीन कमान की जरूरत नहीं होती है।

❐ **छात्रा,** वानिकी

डॉ. सम्पूर्णानन्द झा

मिथिला : क्षेत्र एक पौराणिक परिचय

मिथिला अति प्राचीनकाल से भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में विख्यात रहा है। जब–जब रघुवंशपुरी इच्छाकु कुल राजा दशरथ का राज्य अयोध्या का नाम लेते है तो उस समय परमपवित्र विदेहपुरी मिथिला कुल का राजा जनक का राज्य मिथिला का भी स्मरण हो आता है । मिथिला राज्य प्राचीन समय में विदेह राज्य की राजधानी थी, जो हिमालय और गंगा नदी के तलहटी के बीच स्थित था । वर्तमान में यदि इसे रेखांकित किया जाय तो प्राचीन मिथिला क्षेत्र आज के बिहार, झारखंड एवं पड़ोसी देश नेपाल के भाग में विभाजित है। यह विदेह या मिथिला राज्य पूर्व में कोशी, पश्चिम में गंडक, उत्तर में हिमालय और दक्षिण में गंगा से घिरा माना जाता है। यह मिथिला क्षेत्र विश्व के दो महान, धार्मिक एवं सम्मानित नामों गौतम बुद्ध और वर्धमान महावीर का ज्ञान क्षेत्र एवं कर्मक्षेत्र का धरोहर भी रहा है।

मिथिला नाम के उत्पति के संबंध में एक पौराणिक कथा विभिन्न धर्मशास्त्रों में उल्लेखित है जिसके अनुसार राजा मिथि के नाम पर मिथिला शब्द की उत्पति हुई है। राजा मिथि ने अपने राजधानी की स्थापना जिस जगह पर की उसका नाम मिथिलापुरी रखा जो मिथिला के नाम से जाना जाने लगा । पौराणिक कथा के अनुसार राजा निमि के पूर्वज सरस्वती नदी क्षेत्र में शासन करते थे। इच्छाकु वंशीय राजा निमि ने इस क्षेत्र में कई वर्षों तक तप एवं यज्ञ का संपादन किया विशेष परिस्थिति में उन्होने मैथिल गौतम से पौरोहित का निर्वाह करवाया जिसके कारण उनके कुल गुरू ऋषि वशिष्ठ ने राजा निमि को शरीर पात का अभिशाप दे दिया जिसके फलस्वरूप राजा निमि की मृत्यू हो गई ।

राजा निमि के मृत्योपरान्त राज्य के सभी संत एकत्रित हुए

एवं पूजा–पाठ और यज्ञ के द्वारा निमि के मृत शरीर का मंथन किया गया तथा उससे एक बालक का प्रादुर्भाव हुआ जिसका नामकरण मिथि किया गया इस प्रकार मनुष्य के रूप में निमि के आत्मा को पुनः वापस लाया गया। मिथि के नेतृत्व में सरस्वती क्षेत्र को छोड़ सदानीरा (गंडक) नदी के तट पर आ बसे मिथि ने जो नगरी बसाई उसे मिथिला कहा गया ।

राजा मिथि द्वारा नव निर्मित नगर मिथिला विदेह राज्य की राजधानी होने के कारण शासन का केन्द्र बना जहां से जनक वंश के राजाओं ने पुरे मिथिला राज्य पर शासन किया राजा मिथि अपने पिता के शरीर से बाहर पैदा हुए थे इसीलिए उन्हें विदेह और जनक कहा गया । जनक वंश का उल्लेख ब्रह्मपुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण, भागवत पुराण, गरूड़ पुराण, महाभारत तथा विभिन्न जातकों में पाया जाता है । जिसके आधार पर जनक वंश को तीन भागों में बांटा गया हैः–

1. राजा मिथि से लेकर 22वें राजा छस्वरोम तक का काल जिसे जनक वंश के उत्थान का काल माना जाता है ।
2. 23वें राजा सीरध्वज से लेकर 29वें राजा सकुनी तक जिसे जनक वंश का विस्तार काल कहा जाता है ।
3. 30वें राजा अंजन से लेकर 53 वे राजा कृति तक जिसे इस वंश के पतन का काल समझा जाता है । जनक वंश में सबसे प्रसिद्ध 23वें राजा, राजा सीरध्वज जनक थे, जो सीता के पिता थे इस वंश में कुल 53 राजा हुए ।

7वीं शताब्दी इसापूर्व में मिथिला साम्राज्य मगध राज्यवंश के शासक लिच्छवी के नियंत्रण में आ गया, तत्पश्चात् छठी शताब्दी ईसापूर्व यथा 5वीं/6वीं शताब्दी तक मिथिला क्षेत्र में या सहीसुँध नन्द, मौर्य, सुँघकांता, गुप्ता, वर्धन आदि कई राज्य वंशों ने समय–समय पर शासन किया। राजा जनक के बाद मिथिला में राजा सलहेस के राजा बनने तक कोई महत्वपूर्ण शासक नहीं था। राजा सलहेस ने महिसौथ (जिला–सिरहा, नेपाल) में अपनी राजधानी बनाया उन्होंने तिब्बतियों द्वारा कई बार हुए हमलों में अपने क्षेत्र का बचाव किया, जिसके फलस्वरूप जयवर्धन सैलेस से सलहेस अर्थात पहाड़ो के राजा कहलाये। राजा सलहेस के बाद लगभग तीन शताब्दीयों तक बंगाल की गौड़ अंचल के राजा पालराज्य वंश का शासन रहा। यह राज्यवंश बौधधर्म के अनुयायी थे और वे जाति से कायस्थ थे उनकी राजधानी बलिराजगढ़ वर्तमान में बावुबरही मधुबनी जिला में स्थित था। इस वंश का अंतिम राजा मदनपाल थे। सामन्त सेन जो गौड़ कायस्थ थे एवं हिन्दुधर्म के अनुयायियों में से एक थे। 12वीं शताब्दी में मिथिला के लोगों ने मदनपाल को हराने में सामन्त सेन की मदद की तत्पश्चात कर्नाटक राज्यवंश के शासक नान्यदेव ने सेन राज्यवंश के अंतिम राजा लक्ष्मण सेन को पराजित किया और मिथिला के राजा बन गये जिन्होंने सिम्रौनगढ़ (वर्तमान में बीरगंज, नेपाल) को अपना राजधानी बनाया। पूरे मिथिला को जीतने के बाद उन्होंने अपनी राजधानी क्रमशः कमलादित स्थान एवं मधुबनी जिले के अंध्राठाढी को अपना राजधानी बनाया । कर्नाटक राज्यवंश का शासक कर्ण कायस्थ थे जिसके कारण इसके राज्यवंश का नाम कर्नाट पड़ा। कर्नाट राजयवंश में राजा हरी सिंहा देव सबसे प्रसिद्ध राजा हुए

मिथिला एवं कर्नाटवंश

कर्नाटक वंश का मिथिला में उदय 11वीं शताब्दी के अंत एवं 12वीं सदी के शुरू में हुआ। नान्यदेव चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्टम् की मदद से मिथिला के पश्चिम में सिम्रौनगढ़ (वीरगंज,नेपाल) पर अपना वर्चस्व स्थापित कर पहली राजधानी बनाई । राजा नान्यदेव ने मिथिला के तत्कालीन सेन वंशीय अन्तिम राजा लक्ष्मण सेन को पराजित कर मिथिला में अपना साम्राज्य स्थापित किया। कर्नाटक राज्यवंश के शासक नान्यदेव कर्ण कायस्थ थे जिसके कारण उनके राज्यवंश का नाम कर्नाट पड़ा। कर्नाट वंश का राजा नान्यदेव महान योद्धा के अलावा संगीत क्षेत्र में भी अपनी पैठ रखते थे, उन्होंने वर्गीकृत रागों का विश्लेषण कर संगीत के सन्धि पर ''सरस्वती–हृदयलंकार'' ग्रन्थ लिखा जिसकी प्रति पुणे भंडारकर अनुसंधान संस्थान में संरक्षित है। नान्यदेव का

पुत्र गंगदेव भी एक योग्य शासक बना । कर्नाटक राज्यवंश में राजा हरींसिंहा देव सबसे प्रसिद्ध हुए उन्होंने मैथिली ब्राह्मणों और कर्ण कायस्थों के पंजी व्यवस्था को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे कला और साहित्य के महान संरक्षक थे। कर्नाटवंश के शासनकाल को **''मिथिला का स्वर्णयुग''** भी कहा जाता है।

1326 ईसवीं में फिरोजसाह तुगलक ने हमला कर मिथिला क्षेत्र पर विजय प्राप्त की इस प्रकार इस्लामी आक्रमण के बाद वे नेपाल के पहाड़ियों की ओर भागने को मजबूर हुए इस तरह 1326 में कर्नाटवंश का शासन मिथिला में अन्त हो गया। हरींसिंहा देव के पुत्र जगत सिंह देव ने भक्तपुर (काठमाण्डौ, नेपाल) नायक के विधवा राजकुमारी से विवाह किया । उनके वंशजों ने नेपाल के मल्लवंश की स्थापना की जिसने लगभग 300 वर्षो तक शासन किया उनके वंशज न सिर्फ काठमाण्डौ में मल्लवंश में संस्थापक बने अपितु भक्तपुर में मैथिली भाषा के संरक्षक होने के लिए जाने जाते थे ।

इसवीं सन् 1326 में फिरोज शाह तुगलक ने मिथिला क्षेत्र पर विजय प्राप्त किये जिसके कारण कर्नाटक राज्यवंश के अंतिम राजा हरिसिंह देव नेपाल चले गये तत्पश्चात् लगभग तीन दशकों तक मिथिला में अराजकता फैल गई जिसके कारण इसवीं सन् 1353 में ओइनी गांव (जिला–समस्तीपुर) निवासी पंडित कामेश्वर ठाकुर को फिरोज साह तुगलक ने ''कराड़ राजा'' के रूप में नियुक्त किया। यह राज्यवंश ओइनी गांव पर ओइन्वर राज्यवंश के नाम से जाना जाने लगा। सिकन्दर लोधी ने 1526 में मिथिला क्षेत्र पर हमला किया और उन्होंने ''अलाउद्दीन'' को इस क्षेत्र का शासक बना दिया । पुनः मिथिला में अराजकता फैल गई और जब अकबर सम्राट बने तो उन्होंने ईसवी सन् 1556 में एक गरीब पंडित महेश ठाकुर के पांडित्य को देखकर तिरहुत का राजा घोषित किया । महेश ठाकुर के पूर्वज गंगाधर उपाध्याय ग्राम गंगौली (जिला मधुवनी) के निवासी थे जिसके वंशज मध्यप्रदेश के खंडवा चले गये कालान्तर में इस कुल का नाम ''खंडवाला राज्यवंश'' कहलाया जाने लगा। खंडवाला राज्यवंश के शासन को ''तिरहुत सरकार'' के नाम से भी जाना जाने लगा। इस शासन में कुल 22 राजा हुए जिसके अंतिम राजा महाराजा कामेश्वर सिंह (1929–1960) थे ।

इस प्रकार भारतीय साहित्य के श्रोतों एवं मिथिला के लोक श्रुति के आधार पर प्राचीन मिथिला को निम्न प्रकार समझा जा सकता है:–

रामायण काल तक के शासकों में सर्वप्रथम निमि के पुत्र मिथि को मिथिला के संस्थापक राजा के रूप में जाना जाता है। राजा ''सीरध्वज जनक'' सीता के पिता को महान दार्शनिक, विदेह एवं अनाशक्ति के रूप में जाना जाता है। उनके प्रजा को शिष्ट एवं अतिथि परायण के रूप में जाना जाता है। विष्णु पुराण में मिथिला को ''विदेह नगरी'' कहा गया है। महाभारण कथा में जनक नाम के राजाओं का वंश मिथिला में सर्व प्रसिद्ध राज्य वंश होने और भगवान कृष्ण अपने साथ पाण्डवों को लेकर इस नगर में आये थे का उल्लेख भी मिलता है । साथ ही उस समय मिथिला का नगर अग्निदाह में जलकर खाक होने लगा परन्तु राजा जनक इससे बिना विचलित हुए प्रजा को समझाने लगे की अपना कुछ भी नही जल रहा इसलिए जनक को विदेह कहा गया । जैन धर्म ग्रन्थों के अनुसार ''मल्लिनाथ'' और ''नेमिनाथ'' दोनों ही तीर्थंकरों ने जैन धर्म में यही कनकपुर नाम नगर, में दीक्षा ली थी और उन्हें ''कैवल्य ज्ञान'' की प्राप्ति हुई थी। महावीर ने मिथिला में गंगा और गंडकी के संगम पर निवास किया और जैन सूत्र–प्रज्ञापणा मे मिथिला को ''मिलिलवी'' कहा गया है। मिथिला मण्डल के विद्वानों में वाचस्पति मिश्र (ग्राम ठाढी जिला मधुबनी 13वीं शताब्दी), मण्डन मिश्र तथा उनकी भार्या भारती, जयदेव एवं विद्यापति को मिथिला विभूति के नाम से जाना जाता है। मण्डन मिश्र एवं भारती ने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ कर उन्हें शास्त्र विद्या में पराजित किया था। जिसके फलस्वरूप मिथिला का परिचय विद्वानों की कर्मस्थली के रूप में पहचाना जाने लगा।

❐ **उप–कुलसचिव,** परीक्षा

डॉ. अमिता

जल, जंगल, जमीन का संकट और आधी आबादी

पर्यावरण मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मनुष्य प्रारंभ से ही प्रकृति को पूजता रहा है, क्योंकि मनुष्य प्रकृति पर पूरी तरह से निर्भर रहा है। इसलिए इससे मनुष्य की आस्था का गहरा संबंध है। यही कारण है कि कहीं सुहागन अपनी सुहाग की लंबी उम्र के लिए वट सावित्री व्रत के रूप में वट वृक्ष की पूजा करती हैं तो कहीं ग्रहों से दूर रहने के लिए पीपल वृक्ष को पूजा जाता है तो कहीं एकादशी जेठान व्रत में तुलसी जैसे औषधीय पौधे की पूजा की जाती है। सिर्फ यही नहीं हमारे देश में छठ पूजा जैसे हिंदुओं के कई ऐसे महत्वपूर्ण त्योहार हैं, जिसमें बिना नदी की पूजा के त्योहार को पूर्ण नहीं माना जाता है। जल, जंगल, जमीन के प्रति आस्था मनुष्य की भावनाओं से जुड़ी हुई है। यदि इतिहास पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि मिस्त्र, सिंधु आदि सभ्यताएं नदी अथवा प्रकृति के कारण ही सबसे समृद्ध सभ्यताओं में गिनी जाती हैं जिसे 'नदी की देन' कहा गया है। यही कारण है कि गंगा जैसी नदियों को चुनावी मुद्दे के रूप में सबसे ज्यादा भुनाया जाता है। नर्मदा बचाओ आंदोलन, चिपको आंदोलन, टेहरी बांध विरोधी आंदोलन, मूक घाटी एप्पिको आंदोलन, विष्णु प्रयाग बांध, चिलिका आंदोलन एवं पानी बचाओ आंदोलन और दिल्ली का वायु प्रदूषण नियंत्रण आदि कई ऐसे आंदोलन हमारे सामने हैं जो प्रकृति से मिलने वाले जल, जंगल और जमीन से जुड़े हैं।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 में पर्यावरण को परिभाषित करते हुए कहा गया है "पर्यावरण में एक तरफ पानी, वायु तथा भूमि और उनके मध्य अंतर्सम्बन्ध विद्यमान है, तो दूसरी तरफ मानवीय प्राणी, अन्य जीवित प्राणी, पौधे, सूक्ष्म जीवाणु एवं सम्पत्ति सम्मिलित हैं। "भारत में पर्यावरण के संरक्षण के प्रति जागरुकता 321 और 300 ईसा पूर्व के मध्य से देखी जा सकती है। पर्यावरण संरक्षण के लिए कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भी वर्णन किया था।

रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण, कृष्णा, सिंधुगाथा और गीता के उपदेशों में भी पर्यावरण संरक्षण की बात की गई है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से मनुष्य ने जल, जंगल और जमीन अर्थात् प्रकृति का इतना दोहन शुरू कर दिया कि प्राकृतिक आपदाएं निरंतर मनुष्य को घेरे हुए है और उत्तराखंड, कश्मीर में आई प्राकृतिक त्रासदियां तथा कोरोना जैसी महामारी आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। मनुष्य अपने चंद स्वार्थों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन कर प्राकृतिक आपदाओं और खतरों को लगातार निमंत्रण दे रहा है। विकास के नाम पर लगातार पर्यावरण का विनाश किया जा रहा है।

जब मैं श्रीनगर घूमने गई। कश्मीर को लेकर जिस स्वर्ग की बात सिर्फ सुनी थी, वह चरितार्थ हो रहा था। वहां जाकर एक ऐसे एहसास से गुजर रही थी, जिसे शब्दों में कहना मुश्किल है। नदियों और पेड़.–पौधों से निकलने वाले मधुर संगीत से आत्मा मंत्रमुग्ध हो गया था। किंतु पर्यावरण का यह मनोरम दृष्य मनुष्य के विनाशक रूप के कारण मृतप्राय होता जा रहा है।

हमारे समाज के संवेदनशील लोगों द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए कई आंदोलन चलाए गए, जिसमें महिलाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्ष 1730 में जोधपुर के महाराजा को महल बनाने हेतु लकड़ी की आवश्यकता हुई तो राजा के सैनिक खिजड़ी गाँव में पेड़ों को काटने हेतु पहुंचे। तब उस गाँव की अमृता देवी के नेतृत्व में 84 गाँव के लोगों ने पेड़ों को काटने का विरोध किया। इसके बावजूद जब सैनिक पेड़ों को काटने लगे तो अमृता देवी पेड़ से चिपक गयीं और कहा कि पेड़ काटने से पहले मुझे काटना होगा। सैनिकों ने अमृता देवी को पेड़ के साथ काट दिया और यहीं से मूल रूप से 'चिपको आंदोलन' की शुरुआत हुई थी। अमृता देवी के इस बलिदान से प्रेरित होकर अन्य महिला और पुरुष पेड़ों से चिपक गए और लगभग 363 लोग विरोध के दौरान मारे गए। जब राजा को इस बात का पता चला तो उन्होंने पेड़ों को काटने से मना किया। खिजड़ी गाँव की इन महिलाओं ने एक ऐसा इतिहास रचा, जो आज भी महिलाओं के लिए प्रेरणास्रोत है।

आजादी के बाद का पहला पर्यावरण संरक्षण आंदोलन चिपको आंदोलन को कहा गया। 'चिपको' नाम के पीछे एक दिलचस्प कहानी है। साइमन कंपनी के लोग जब गोपेश्वर पेड़ काटने पहुंचे तो चंडी प्रसाद भट्ट जी ने जोर से चिल्लाते हुए कहा कि "कह दो साइमन वालों से कि हम लोग अंगू के पेड़ नहीं कटने देंगे। वे कुल्हाड़ी चलायेंगे तो हम पेड़ों का 'अंगवाल्ठा' कर लेंगे।" इस तरह एक नया शब्द सामने आ गया। 'अंगवाल्ठा' का मतलब होता है 'आलिंगन'। इस तरह 27 मार्च 1973 के दिन गोपेश्वर में 'चिपको' आंदोलन का जन्म हुआ। यों तो इस आंदोलन का विचार चंडी प्रसाद भट्ट जी के द्वारा दिया गया था, किंतु जिस दिन यह आंदोलन प्रारंभ हुआ, उस दिन गांव के सारे पुरूषों को एक साजिश के तहत बरसों से अटके पड़े मुआवजे को लेने के लिए चमोली भेज दिया गया था। इस मौके का फायदा उठाकर रेणी जंगल काटने के लिए जब ठेकेदार और मजदूर वहां पहुंचे तो महिलाओं ने उनका डटकर सामना किया। महिला मंडल दल की अध्यक्ष गौरा देवी के नेतृत्व में सारी महिलायें वहां रात भर डटी रहीं। पहले तो महिलाओं ने उनसे निवेदन करते हुए कहा कि "भुला (भैया) यह जंगल हमारा है। इससे हमें जड़ी–बूटी मिलती है, सब्जी मिलती है। इस जंगल को मत काटो। जंगल काटोगे तो हमारा यह पहाड़ हमारे गांव पर गिर पड़ेगा, बाढ़ आयेगी, बगड़ जायेंगे, भुला हमारे मायके को मत बर्बाद करो। अभी खाना बना लो खा लो फिर हमारे साथ नीचे चलना। जब हमारे मर्द वापस आ जायेंगे तब फैसला होगा। मामला तूल पकड़ चुका था। मर्दों ने महिलाओं के साथ बद्तमीजी करनी शुरू कर दी। एक ने गौरा देवी पर निशाना साधा तो गौरा देवी ने अपनी छाती खोल दी और बोली लो मारो बंदूक और फिर काट ले जाओ हमारा मायका। इस तरह महिलाओं ने अपना मायका बचाया और यह आंदोलन धीरे–धीरे पूरे उत्तराखंड में फैल गया।

पर्यावरण को होने वाले नुकसान से यों तो हर वर्ग प्रभावित होता है किंतु महिलाओं पर इसका विशेष दुष्प्रभाव सबसे

ज्यादा देखा जा सकता है। महाराष्ट्र की वाटर वाईव्स (पानीवाली बाई) इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। महाराष्ट्र के सूखा प्रभावित इलाके विदर्भ के गांव देंगमाल के घरों में पिछले कई सालों से एक प्रचलन है जिसके तहत लोग कई पत्नियां रखते हैं। इन पत्नियों को मुख्य रूप से पानी लाने के लिए रखा जाता है। पंचायत ने भी इस चलन को मान्यता दे रखी है। एक को पत्नी का आधिकारिक दर्जा हासिल होता है जबकि बाकी दो कहलाती हैं, 'पानीवाली बाई'। गांव में पानीवाली बाईव्स रखने का चलन पानी की समस्या के चलते बढ़ा है। गांव में नल नहीं हैं। इसलिए ये पत्नियां तीन किमी दूर घंटों पैदल चलकर पानी लेने जाती हैं। दूसरी या तीसरी पत्नी वही बनती हैं जिनके पति की या तो मौत हो चुकी हो या फिर पति ने उन्हें छोड़ दिया हो। गांव में लड़की के जन्म पर खुशी मनाई जाती है क्योंकि माना जाता है कि पानी भरने के लिए एक और आ गया। पहली बीवी के बच्चे होते हैं। वहीं 2 पत्नियों से कोई औलाद नहीं होते। ये दोनों औरतें वॉटर वाइव्स होती हैं। यानी वे पत्नियां जो तभी तक पत्नियां हैं जब तक वे पानी लाएंगी। गांव की पंचायत को मर्दों की कई–कई शादियों पर कोई एतराज नहीं।

इस तरह हम देखते हैं कि सिर्फ पानी के लिए महिलाओं की जिंदगी कितनी बद्तर अवस्था में चली जाती है। वे अपने जीवन को अपने हिसाब से नहीं जी पाती। अपने वैवाहिक जीवन का भी कोई सुख नहीं भोग पाती हैं। नदियों को जीवनदायिनी माना जाता है। अगर एक दिन भी पानी न मिले तो हमारी पूरी दिनचर्या रूक जाती है। इस महत्व को पढ़े.लिखे लोग भले ही न समझे लेकिन पर्यावरण के नजदीक रहने वाले लोग इसे भलीभांति समझते हैं भले ही वे अनपढ़ ही क्यों न हों। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ की केलो नदी पर पंप हाउस बनाकर जेएसपीएल जिंदल उद्योग को पानी दिए जाने के विरोध में अनशन पर बैठी गांव की सत्यभामा सौरा नाम की आदिवासी महिला 26 जनवरी 1998 को अनशन के दौरान शहीद हो गईं। इस तरह वे नदी आंदोलन का नेतृत्व करने वाली देश की पहली महिला बन गईं। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र जी के शब्दों में कहें तो "जिस तरह द्रौपदी के चीर हरण की बातें थीं उसी तरह जल हरण की बातें हो रही है। दुर्भाग्य् से नदियों से जो जल हरा जा रहा है उसे पीछे से देने वाला कोई कृष्ण नहीं है।"

कोई भी दंगा हो या पर्यावरण का विनाश या फिर महामारी हर हाल में महिलाएं ही सबसे ज्यादा प्रभावित होती रही हैं। इस संदर्भ में रामचन्द्र गुहा ने कहा है "पर्यावरण का विनाश साफ तौर पर हाशिये पर रह रही संस्कृतियों और कुछ पेशों जैसे आदिवासी, बंजारे, मछुआरे और कारीगरों पर सबसे बड़ा खतरा है, जो हमेशा से ही अपने अस्तित्व के लिए अपने आस–पास की प्रकृति पर निर्भर रहे हैं। लेकिन जैव ईंधन के स्त्रोतों के विनाश का सबसे बड़ा असर महिलाओं पर पड़ा है।"

पर्यावरण से छेड़छाड़ का क्या नतीजा होगा यह कोरोना जैसी महामारी से स्पष्ट है। इनके विनाश पर विकास करने वाले लोग ये बात भूल जाते हैं कि पर्यावरण के विनाश में आधी आबादी का विनाश भी शामिल हो जाता है। जब आधी आबादी का विनाश होने लगे तो पूरी आबादी समाप्त होने में ज्यादा समय नहीं लगता। महिलायें समाज के निर्माण में सबसे बड़ी सहायक होती हैं। यदि वे प्रभावित होंगी तो पूरा समाज प्रभावित होगा। पर्यावरण के विनाश से एक विघटित समाज का जन्म होता है।

आज हम पर्यावरण पर जो भी दुष्प्रभाव देख रहे हैं यदि उसे मानव निर्मित कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इससे यह भी स्पष्ट है कि संपूर्ण विनाश मानव निर्मित है। इन सबका सबसे बुरा असर अंततः महिलाओं पर ही देखा जाएगा क्योंकि उनकी आस्था और संवेदनशीलता प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी रही है। उनकी जीवनचर्या की निर्भरता प्रकृति पर है और प्रकृति को नुकसान पहुंचाना उनकी जीवनचर्या को नुकसान पहुंचाना है।

❐ **सहायक प्राध्यापक,** पत्रकारिता एवं जनसंचार

डॉ. रमेश कुमार गोहे

डॉ. खूबचंद बघेल : छत्तीसगढ़ राज्य के प्रथम स्वप्नद्रष्टा

डॉ. खूबचंद बघेल अपने माता–पिता केतकी बाई और जुड़ावन प्रसाद की संतान होने के साथ ही इस छत्तीसगढ़ मईया के भी सुपुत्र थे। आपने जीवन पर्यन्त साहित्य और समाज की सेवा की। राष्ट्रीयता की चेतना से ओत–प्रोत आपका सम्पूर्ण जीवन भारत की आजादी , छत्तीसगढ़ के आदिवासियों, किसानों, साहित्य सृजन के लिए समर्पित था। इन सबके अतिरिक्त आपकी विशेष पहचान छत्तीसगढ़ राज्य के स्वप्न द्रष्टा के रूप में भी है। आपने भारतीय राजनीति में रहते हुए 1951, 1962 एवं 1967 में छत्तीसगढ़ प्रांत का प्रतिनिधित्व करते हुए विधानसभा में निरंतर छत्तीसगढ़ प्रांत के लिए अलग राज्य की मांग को जीवंत रखा। इस हेतु आपने छत्तीसगढ़ में कई जनजागृति अभियान भी चलाया। 01 नवम्बर 2000 में छत्तीसगढ़ के लिए अलग राज्य की घोषणा हुई और उनका का स्वप्न साकार हुआ। काश ! आप इस समय दुनिया में होते तो आपको कितनी खुशी होती। फिर भी आप अपने महान कार्यों के साथ हमारे बीच में जिंदा हैं। आपने राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई में अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। शिक्षा से चिकित्सा सेवा में दक्ष होने के बावजूद आपने वर्तमान में आजादी के लिए संघर्षरत भारतीय जन–मानस को समझा और छत्तीसगढ़ में आजादी की लड़ाई का नेतृत्व किया। कई बार जेल गए। आपकी प्रेरणा से परिवार के सभी लोग और प्रांत के तमाम लोग जेल जाने के लिए सहर्ष तैयार होकर आजादी की लड़ाई में कूद गए। भारत में राजनीतिक एवं सामाजिक पराधीनता से आप हमेशा चिंतित रहे। सामाजिक गुलामी और भेदभावपूर्ण नीति आपको पसंद नहीं थी। भेदभाव, अस्पृश्यता जैसी समस्याओं पर केन्द्रित नाटक 'ऊँच–नीच' लिखकर आपने सामाजिक समानता का मूल्य स्थापित किया। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए आपने सम्पूर्ण जीवन बलिदान

किया। इस त्याग के लिए आपको छत्तीसगढ़ के समाज सुधारक एवं साहित्यकारों की अग्रिम पंक्ति में रखा जाता है।

छततीसगढ़ की सांस्कृतिक विविधता और विशेषताओं की महक भी आपके लेखन में व्याप्त मिलती है। यहाँ आपका लिखा 'जनरैल सिंग' नाटक का एक काव्यांश देखना उचित होगा जिसमें छत्तीसगढ़ की संस्कृति, कला, रीति–रिवाज की झलक मिलती है।

बासी के गुण कहुँ कहां तक, इसे ना टालो हाँसी में।
गजब बिटामिन भरे हुए हैं, छत्तीसगढ़ के बासी में।
बुद्ध–कबीर मिले मुझको, बस छत्तीसगढ़ के बासी में।
स्वर्गीय नेता की लंबी मुंछे भी बढ़ी हुई थी बासी में।।

आपने लेखन में हमेशा मौलिक चिंतन पर ध्यान दिया। अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से आपने पिछड़ी मानसिकता, दब्बूपन आर्थिक गुलामी आदि पर लिखा। जहाँ '**ऊँच नीच**' नामक नाटक में जातीय अस्पृश्यता एवं भेदभाव को रेखांकित किया। वहीं नाटक '**करम छँड़हा**' में आम आदमी की समस्याओं का वर्णन किया है। उपर्युक्त काव्यांश जो कि 'जनरैलसिंग' नाटक से उद्धत है, में भी हीनभावना से मुक्ति और सांस्कृतिक समृद्धता पर गर्व करने का उल्लेख मिलता है। लेखन के साथ नाटकों का मंचन भी आपने किया। भारत–चीन (1962) लड़ाई के समय आपने 'भारत–माता' नाटक लिखकर अपनी राष्ट्रीय भक्ति की पहचान से फिर एक बार परिचित करवाया। आप भारतीय सामाजिक सुधार के जिन अग्रदूतों से अभिप्रेरित थे, उनमें महात्मा ज्योतिबा फुले, महात्मा गांधी और रामनोहर लोहिया मुख्य रूप से थे। साहित्यिक लेखों, रचनाओं के अतिरिक्त आप निरंतर डायरी लेखन भी करते रहे, जिसमें समाज की परिस्थितियों, राजनीतिक संघर्ष और विविध विषयों पर चिंता देखने को मिलती है।

डॉ. खूबचंद बघेल के व्यक्तित्व की कई विशेषताएं हैं। अगर बिंदुवार समेकित करना चाहें तो वे पेशे से चिकित्सक, मन से भारतीय, आत्मा से छत्तीसगढ़ के सपूत, विचारधारा से सामाजिक –समन्वयकर्ता, चिंतन से साहित्यिक, अभिनय में पूर्ण एक सच्चे देश भक्त एवं माटी पुत्र थे।

❐ **सहायक प्राध्यापक,** हिंदी

डॉ. अखिलेश गुप्ता

स्त्री त्रासदियां और बाज़ार

सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय हित तथा उसकी सुरक्षा के प्रति अत्यधिक सचेत और सक्रिय निराला अपने निजी लाभ के प्रति बेहद उदासीन रहे। इसलिए व्यक्तिगत सुख के बदले राष्ट्रीय हित को वह सर्वोपरि मानते थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी सारी कविताएँ निर्वैयक्तिक हैं। बल्कि उनकी कविताओं में निर्वैयक्तिकता के अलावा वैयक्तिकता भी एकदम निखरे हुए रूप में मिलती है। मसलन, उनकी लम्बी कविता 'सरोज–स्मृति' अपनी पुत्री सरोज के वियोग में लिखी जाने के कारण नितांत वैयक्तिक है, लेकिन उसमें निहित सामाजिक आदर्श उसे निर्वैयक्तिक बना देता है––

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका !
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित–काय"

पुत्री–वियोग और इस दुख की बेला में अपनी स्मृतियों में उसे साक्षात पाकर उसके हित के लिए कभी कुछ न कर सकने की स्थिति पर कवि का आत्मग्लानि से भर जाना––कुछ ऐसा मार्मिक पक्ष है, जिसे पढ़ते हुए अक्सर किसी भी पिता को अपनी पुत्री का अक्स इसमें दिखता है और कुछ देर ठहर कर कवि की इस पीड़ा को वह स्वयं पर आरोपित कर लेता है।

व्यक्तिगत हित के लिए आवश्यकता से अधिक साधन जुटाने का निहितार्थ देश के असहाय और निरन्तर संघर्षशील व्यक्तियों का हक छीन लेने से है। इसलिए छल–छद्म और शोषण पर आधारित अर्थागम के उपायों को जानकर भी वह सिमट कर रह जाते हैं। ऐसे समय में जहाँ चारों–ओर लाभ–लोभ और लूट–खसोट की संस्कृति हावी है; निराला की सर्जनात्मकता इस बात में है कि सामाजिक हित के लिए व्यक्तिगत हित को तिलांजलि देते हुए उसे शब्दों में ढालकर औरों को भी सचेत करने में

वह सक्षम हो जाते हैं। उनकी इस आत्मग्लानि में इतनी कशिश है कि वह नितान्त वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक मान्यता हासिल कर लेती है। यूनानी मिथकीय चरित्र के मारफ़त बच्चन सिंह ने निराला के संघर्षशील व्यक्तित्त्व को लक्षित करते हुए कहा है कि "निराला का संपूर्ण जीवन ही प्रमथ्यु गाथा है। अग्नि लाने का काम उसी ने किया था।"

दुर्भाग्य यह है कि छल, छद्म और शोषण पर आधारित उपभोक्ता संस्कृति आज पूरे देश में अपना जाल बिछा चुकी है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक आते–आते देश का आर्थिक ढाँचा, जो जनता की साधारण ज़रूरतों की पूर्ति तक सीमित था, उसे समाजवाद के लक्ष्य से भटकाकर नव–उदार पूँजीवाद और बाज़ारवाद की ओर मोड़ दिया गया। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण के नाम से आज जिसे प्रचारित किया जा रहा है–दरअसल यह उपभोक्ता संस्कृति ही है, जिसकी गिरफ़्त में अब हमारा पूरा देश है और स्त्री इसकी सबसे आसान शिकार है।

पालतू कबूतर के सहारे शिकारी ढेरो जंगली कबूतर फाँस लिया करते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ स्त्रियों के साथ इसी तरह का व्यवहार अपना रही हैं। सौन्दर्य–प्रतियोगिताओं में भारतीय नारियों का दबदबा बढ़ता–सा प्रतीत हो रहा है तो इसके पीछे का भेद कमोबेश अधिसंख्य भारतीय जनता के सामने खुल चुका है–भारतीय बाजार वैश्विक अर्थव्यवस्था को अब प्रभावित करने लगा है। रसोई की चारदीवारी में घिरी हमारे देश की लड़कियों की झोली में भी इसीलिए विश्वसुंदरी का खिताब शामिल होने लगा है। बहुराष्ट्रीय निगम महज़ अपना उत्पाद भारतीय बाज़ार में खपाने के लिए गौर वर्ण को सुन्दरता का मानक बताकर देश की ऐसी लड़कियों को इसमें चयनित करता है। उनके द्वारा निर्धारित सुन्दरता की सूची में शरीक लड़कियाँ आधुनिक दृश्य–श्रव्य यंत्रों (टेलीविजन और इंटरनेट) पर गोरेपन की क्रीम को हीनताबोध से छुटकारा दिलाने का रामबाण उपाय बताते हुए बारम्बार यह दुहराती हैं कि कालेपन के कारण देश की नौजवान युवतियाँ नौकरियों में असफल रह जाती हैं। व्यक्तित्त्व अनाकर्षक लगने पर लोगों का मिलना–जुलना कम हो जाता है या फिर शादी न हो पाने का ठीकरा भी रंगभेद पर फोड़ती हैं।

जैसा कि मार्क्स ने कहा था कि "जहाँ 'सरप्लस' होगा, वहाँ सौन्दर्य नहीं रह सकता।" सौन्दर्य के नाम पर बहुराष्ट्रीय निगमों को 'सरप्लस' हथियाने का खेल खेलते हुए देख बेशक मार्क्स की यह चेतावनी याद आती है। कम्पनियाँ महज़ सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री बेचने तक सीमित नहीं हैं। शारीरिक सौष्ठव के बहाने उनकी खाद्य–सामग्रियों और स्वास्थ्य संबंधी दवाइयों तक में उन्होंने सेंधमारी कर ली है। हीनताबोध से निजात के नाम पर स्त्रियों में हीनताबोध पनपाना उनका ख़ास मकसद है। रंगभेद, दुबलापन और बौनेपन की व्याधियों से संबंधित हौवा ने स्त्री की आस्था को बाज़ार पर घनीभूत ढंग से एकाग्र कर दिया है। पुरुष वर्ग आज भी इससे अधिकतर अछूता ही रहा है। इससे अधिक दुखद स्थिति क्या हो सकती है कि बाज़ार ने स्त्री की कारुणिक छवियों को भी अर्थागम का साधन बना लिया है।

कविता स्त्री की इन विडम्बनाओं से विमुख नहीं है। अपने समय में बाज़ार के तमाम वैश्विक संजालों से वह निष्कवच मुठभेड़ कर रही है–

"दिल्ली में जी.बी. रोड पर
एक स्त्री
ग्राहक पटा रही है।
पलामू के एक कस्बे में
नीम उजाले में एक नीम हकीम
एक स्त्री पर गर्भपात की
हर तरकीब आजमा रहा है।
बाड़मेर में
एक शिशु के शव पर
विलाप कर रही है एक स्त्री
बंबई के एक रेस्त्राँ में
नीली–गुलाबी रोशनी में थिरकती स्त्री ने
अपना आख़िरी कपड़ा उतार दिया है

और किसी एक घर में
ऐसा करने से पहले
एक दूसरी स्त्री
लगन से रसोईघर में
काम समेट रही है।
महाराजगंज के ईंट भट्ठे में
झोंकी जा रही है एक रेज़ा मज़दूरिन
ज़रूरी इस्तेमाल के बाद
और एक दूसरी स्त्री
चूल्हे में पत्ते झोंक रही है
बिलासपुर में कहीं।
ठीक उसी रात उसी समय
नेल्सन मण्डेला के देश में
विश्व सुंदरी प्रतियोगिता के लिए
मंच सज रहा है।"

'रात के संतरी की कविता' : कात्यायनी

जीवन के अलग–अलग हिस्सों से हासिल विषम और तिक्त जीवनानुभवों के खण्ड दृश्यों को आपस में जोड़कर कात्यायनी सार्वजनिक संदर्भ में स्त्री की यातना, शोषण और त्रासदी से उपजी कारुणिक अवस्थाओं का मानो एक लैंडस्केप प्रस्तुत करती हैं। स्त्री–संबंधी कविता–कर्म के क्षेत्र में अर्चना वर्मा, अनामिका, निर्मला पुतुल, चन्द्रकला त्रिपाठी, रंजना जायसवाल, स्नेहमयी चौधरी, सुनीता जैन और पद्मा सचदेव जैसी कवयित्रियों की दीप्त अवस्थिति स्त्रियों की हालत को सुधारने में असरदार साबित हो रही है। समकालीन कवि भी स्त्रियों को पराधीन बनाने वाली इस नयी बाज़ारवादी व्यवस्था का पुरज़ोर विरोध करते हुए कारोबारियों द्वारा स्त्रियों के दुख–दर्द से लाभ उठाकर उसे भुनाने की असल प्रवृत्ति को बेनकाब कर रहे हैं और समाज में स्त्री–पुरुष समानता, मानवीय आस्था, प्रेम और अपनत्व की आस बँधा रहे हैं; ताकि बाज़ार के चंगुल से समाज की आधी आबादी को फँसने से बचाया जा सके––

"इस अंधकार भरे समय में
जब कृष्ण, भक्ति और प्रेम पर
कारोबारियों का कब्ज़ा है
मेरे पास अपनत्व की भाषा है
शायद यही मेरी कविता है उसके लिए।"

'एक कविता उसके लिए' : प्रेमचंद गाँधी

❐ **सहायक प्राध्यापक,** अस्थायी, हिंदी

डॉ. गुरु सरन लाल

विश्वसनीयता का संकट और डिजिटल मीडिया

मीडिया का एक नया रूप है डिजिटल मीडिया। डिजिटल मीडिया में अन्य माध्यमों की खूबियां समाहित हैं जैसे प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, परंपरागत मीडिया। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का अधिकतम और अद्यतन प्रयोग है डिजिटल मीडिया में। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने समय–समय पर विभिन्न तकनीकों का आविष्कार किया है। अलग–अलग कालखण्डों में आविष्कार किये गए इन तकनीकों व आविष्कारों का अनुप्रयोग मीडिया में भी बखूबी किया गया है। फलस्वरूप संचार के नये माध्यम का प्रादुर्भाव हुआ। प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार से प्रिंट मीडिया, रेडियो के आविष्कार से रेडियो पत्रकारिता या रेडियो संचार, टेलीविजन के आविष्कार से टेलीविजन पत्रकारिता या टेलीविजन संचार। इसी प्रकार इंटरनेट के आविष्कार से डिजिटल मीडिया का प्रादुर्भाव हुआ। डिजिटल मीडिया के माध्यम से मीडिया का दायरा बढ़ गया है। अन्तर्वस्तु को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करने में सहूलियत हुई है। डिजिटल मीडिया के अन्तर्गत ई–पेपर, ई–मैग्जीन, ऑनलाइन रेडियो, ऑनलाइन टेलीविजन, वेबपोर्टल, ब्लॉग, सोशल मीडिया, यूट्यूब इत्यादि आते हैं। डिजिटल मीडिया ने मीडिया मिक्स और नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा को साकार किया है। डिजिटल मीडिया की अन्तर्वस्तु टेक्स्ट, पिक्चर, ऑडियो, विजुअल, ऑडियो–विजुअल, एनिमेशन, इलेस्ट्रेशन, ग्राफ, चार्ट आदि रूपों में उपलब्ध होती है।

विशेषताएं

डिजिटल मीडिया की अनेक विशेषताएं हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण यह माध्यम बहुत ही कम समय में लोगों के मध्य काफी लोकप्रिय हो गया है। डिजिटल मीडिया बहुत ही तीव्र गति से सूचनाओं को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाता है। कोई घटना घटित होने के तुरंत बाद ही उसकी जानकारी डिजिटल मीडिया पर आ

जाती है। साथ ही महत्वपूर्ण मुद्दों व विषयों पर चर्चा–परिचर्चा, कमेंट, बहस इत्यादि सामग्रियां भी उपलब्ध होती हैं।

डिजिटल मीडिया के उपभोक्ता उपलब्ध सामग्रियों पर अपनी प्रतिक्रिया आसानी से व्यक्त कर सकते हैं। अन्तर्वस्तु के अंत में लाइक, कमेंट और शेयर का विकल्प उपलब्ध होता है। डिजिटल मीडिया पर सूचनाएं रीयल टाइम में दिया जाना आसान हो गया है। जब कोई घटना घटित हो रही है या कोई कार्यक्रम आयोजित हो रहा है, ठीक उसी समय उपभोक्ताओं को वह सूचना दी जाती है। डिजिटल मीडिया के कई प्लेटफॉर्म पर लाइव का विकल्प है जैसे फेसबुक लाइव, यूट्यूब लाइव। रेडियो और टेलीविजन पर लाइव आ रहे कार्यक्रम भी डिजिटल मीडिया प्लेटफॉर्म पर सीधे लाइव देखे–सुने जा सकते हैं। अन्तर राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, स्थानीय मुद्दों, विषयों, समस्याओं पर लगातार फॉलोअप डिजिटल मीडिया में मिलता है। अन्य मीडिया जिन मुद्दों को प्राथमिकता नहीं देती या भुला देती है, उन्हें भी डिजिटल मीडिया पर देखा जा सकता है। जब तक समस्या का निराकरण नहीं हो जाता, तब तक डिजिटल मीडिया में उस मुद्दे पर लगातार सामग्रियां आती रहती हैं। डिजिटल मीडिया पर प्रत्येक उपभोक्ता एक रिपोर्टर है। वह किसी भी प्लेटफॉर्म पर अपनी सामग्री अपलोड/पोस्ट कर सकता है। वह सामग्री किसी भी रूप में हो सकती है–लिखे गये शब्द, फोटो, ऑडियो, वीडियो, ऑडियो–विजुअल, एनिमेशन, चार्ट इत्यादि। इसमें गेटकीपिंग का प्रावधान नहीं होता। जब किसी मीडिया की अन्तर्वस्तु को अन्य मीडिया द्वारा प्रकाशित–प्रसारित किया जाता है, तो उसे मीडिया मिक्स कहा जाता है। डिजिटल मीडिया में ट्रेडिशनल मीडिया, प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अन्तर्वस्तु समाहित होती है।

डिजिटल मीडिया के विभिन्न प्लेटफॉर्म

डिजिटल मीडिया के कई प्लेटफार्म हैं, जिनके माध्यम से सूचना लोगों तक पहुंचती हैं। जो समाचार–पत्र पेपर पर प्रकाशित होकर लोगों तक पहुंचता है, उसी के इलेक्ट्रॉनिक संस्करण को ई–पेपर कहते हैं। पेपर पर प्रकाशित समाचार–पत्र और उसके ई–संस्करण की अन्तर्वस्तु बिल्कुल समान होती है। लगभग सभी समाचार–पत्रों के ई–पेपर उनके वेबपोर्टल पर उपलब्ध होते हैं। उपभोक्ता संबंधित समाचार–पत्र के वेबपोर्टल पर जाकर ई–पेपर पढ़ सकता है। लगभग सभी पत्रिकाओं के इलेक्ट्रॉनिक संस्करण उनके वेबपोर्टल पर उपलब्ध होते हैं। इन्हीं इलेक्ट्रॉनिक संस्करण को ई–मैग्जीन कहते हैं। इंटरनेट के माध्यम से रेडियो के विभिन्न कार्यक्रम आसानी से सुने जा सकते हैं। एक स्थान पर बैठे–बैठे दुनिया के किसी भी कोने में प्रसारित होने वाले रेडियो चैनल के कार्यक्रमों को ऑनलाइन रेडियो के माध्यम से सुना जा सकता है। विभिन्न रेडियो चैनलों के मोबाइल एप भी उपलब्ध हैं, जिनके माध्यम से रेडियो के कार्यक्रम उपलब्ध हैं। जिन कार्यक्रमों को श्रोता सुन नहीं पाते, उन्हें उनके वेबपोर्टल के माध्यम से सुन सकते हैं। इसमें समय की बाध्यता नहीं है, जब फुर्सत मिले आप अपने पसंदीदा कार्यक्रम सुन सकते हैं। टेलीविजन बहुत ही आकर्षक माध्यम है, क्योंकि इसमें कार्यक्रम दृश्य–श्रव्य दोनों होते हैं। इंटरनेट की सहायता से टेलीविजन के कार्यक्रम आसानी से देखे जा सकते हैं। अब टेलीविजन सेट के समक्ष उपस्थित होकर कार्यक्रम देखने की बाध्यता नहीं है। आप जहां भी हों ऑफिस में हों, बस में या ट्रेन में हों, अपने स्मार्टफोन के माध्यम से टेलीविजन देख सकते हैं। पूर्व में प्रसारित कार्यक्रमों को भी देखा जा सकता है। विभिन्न टेलीविजन चैनलों के अपने मोबाइल एप हैं। मोबाइल एप के माध्यम से भी टीवी के कार्यक्रम उपलब्ध होते हैं। सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, यूट्यूब आदि पर भी ये कार्यक्रम उपलब्ध होते हैं।

विश्वसनीयता का संकट

कोई भी माध्यम सफल तभी होता है जब उस पर लोग विश्वास करें। उसकी अन्तर्वस्तु पर लोग विश्वास करें। डिजिटल मीडिया पर विश्वसनीयता का संकट है। इसका एक बड़ा कारण है कि डिजिटल मीडिया के पास अपना

मूल कंटेंट नहीं है। यहां समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टीवी इत्यादि की अन्तर्वस्तु उपलब्ध होती है। अच्छे ब्लॉग और यूट्यूब चैनलों को छोड़ दें तो अधिकतर कंटेंट दूसरे माध्यमों के दिखाई देते हैं। कंटेंट की कमी इसलिए भी है कि डिजिटल मीडिया में टेक्निकल एक्सपर्ट होते हैं, रिपोर्टर या एडिटर नहीं होते। फेक न्यूज के बढ़ते चलन ने इस संकट को और गहरा कर दिया है। अफवाह/भ्रम की स्थिति बनी रहती है। डिजिटल मीडिया से जब कोई समाचार लोगों को मिलता है, तो वे अन्य माध्यमों से क्रास चेक करते हैं।

चूंकि डिजिटल मीडिया नया माध्यम है। स्वाभाविक है कि इसे समाज में अपना स्थान बनाने में, अपनी पहचान बनाने में थोड़ा वक्त और लगेगा। अन्य माध्यमों से भी इसकी प्रतिस्पर्धा है। डिजिटल मीडिया में अनेक चुनौतियां हैं जैसे भाषा, निष्पक्षता, फेक न्यूज, पत्रकारिता और रचनात्मक अभिव्यक्ति का घालमेल इत्यादि। साथ ही इसमें खूबियां इतनी हैं कि आने वाले समय में यह माध्यम समाज में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करेगा।

❐ **सहायक प्राध्यापक,** अस्थायी, पत्रकारिता एवं जनसंचार

डॉ. अनुपमा कुमारी

कोरोनाकाल में सोशल मीडिया

यह सोशल मीडिया का दौर है। सोशल मीडिया के लोकप्रिय जंक्शन ट्विटर, फेसबुक, व्हाट्सएप, टेलीग्राम, इंस्टाग्राम तेजी से सूचना के प्राथमिक स्रोत बनते जा रहे हैं। पारंपरिक मीडिया के बड़े से बड़े संस्थान भी सोशल मीडिया के जरिये ही अपने पाठकों, दर्शकों से संवाद कर रहे हैं, इंटरैक्शन कर रहे हैं। हालांकि इस सोशल मीडिया के सामाजिक होने को लेकर और बनाव–बदलाव –बिगड़ाव में इसकी भूमिका को लेकर रोज ही बहस का दौर भी चलता है। एक वर्ग है, जो यह कहता है कि यह सोशल मीडिया बदलाव के नाम पर बनाव से ज्यादा बिगड़ाव के बीज बो रहा है। लेकिन एक बड़ा वर्ग है, जो यह मानता है कि सोशल मीडिया ने मीडिया का असल लोकतंत्रीकरण किया है।

खैर! यह एक अलग पक्ष है। सोशल मीडिया के सकारात्मक पक्ष भी हैं और नकारात्मक भी। उसकी अपनी सीमाएं भी हैं। लेकिन तमाम बातों से पर अगर अभी कोरोना काल में उसकी भूमिका को देखें या आकलन करें तो उसका सकारात्मक पक्ष ही ज्यादा दिखता है।

कोविड–19 महामारी के दौर में सोशल मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण बनती जा रही है। पहली बात तो यही कि सोशल मीडिया के जरिये ही सरकार या तंत्र जन–जन तक त्वरित गति से सूचना फैलाने, जागरूक करने का काम करने में सफल रही। दूसरी ओर सोशल मीडिया के तमाम उपादानों के सहयोग से ही लोग माइक्रो लेवल पर सूचनाएं देते रहे और कोविड–19 के फैलाव की गति को कम किया जा सका।

वर्क फ्राम होम में सोशल मीडिया की ही भूमिका सबसे ज्यादा है। अगर यह व्यवस्था न होती तो एकबारगी से और लंबे समय तक सारा काम–काज ठप ही रहता। इसे शैक्षणिक क्षेत्र में देखें तो कोरोना काल में, लॉकडाउन के दौर में अधिकांश संस्थान सोशल मीडिया के जरिये ही

पठन–पाठन–अध्यापन कार्य कर रहे हैं। स्कूल स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक, अगर यह व्यवस्था ना होती तो छात्र–छात्राओं का संपर्क लंबे समय तक अपने शिक्षक, शैक्षणिक संस्थान से पूरी तरह से टूट जाता, जिसका प्रभाव आने वाले समय में नकारात्मक पड़ता। यह तो एक पक्ष है। अब इसके दूसरे पक्ष को देखें। इस कोरोना काल में अचानक से ही सोशल मीडिया पर प्रतिभाओं का तेजी से आगमन शुरू हुआ है। ग्रामीण स्तर से लेकर शहरों तक की प्रतिभाएं अपने कामों को सोशल मीडिया के जरिये लोगों तक पहुंचा रही हैं। अनेकानेक क्षेत्रों में। सिनेमा हॉल पिछले छह माह से बंद हैं लेकिन नेटफ्लिक्स, अमेजन प्राइम, हॉटस्टार आदि के जरिये लोग नये किस्म की फिल्में देख रहे हैं। हालांकि वेब सिरीज के नाम पर हिंसा और अश्लीलता की सामग्री ज्यादा रह रही है, जिसे लेकर चौतरफा बात भी हो रही है। यह इसका नकारात्मक पक्ष है। उससे भी ज्यादा नकारात्मक पक्ष यह है कि बच्चे तेजी से हिंसक खेलों की ओर उन्मुख हो रहे हैं। पबजी से लेकर अनेक ऐसे खेल हैं, जिसे बच्चे सिर्फ खेल नहीं रहे बल्कि उसकी गिरफ्त में आकर मानसिक रोगी हो रहे हैं। लेकिन इसमें सिर्फ सोशल मीडिया जिस जरिये ऐसे खेल पहुंच रहे हैं, सिर्फ उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता बल्कि अभिभावकों की विफलता के तौर पर भी इसे देखा जाना चाहिए। अभिभावक अपने बच्चों पर नियंत्रण रखें या इस दौर में ज्यादा से ज्यादा समय दें। दुनिया के साहित्य, संगीत, खेल, मनोरंजन के अन्य उपकरणों और उद्यमों से अपने बच्चों को परिचित करायें तो बच्चे उस दिशा में उन्मुख नहीं होंगे।

भारत सरकार ने भी मीडिया द्वारा कोविड–19 की संभावित गलत रिपोर्टिंग और उससे उत्पन्न अनुचित भय के वातावरण को लेकर सर्वोच्च न्यायालय से मार्गदर्शन की मांग आम की है ताकि लोगों में पैनिक न फैले। गृह मंत्रालय ने सुप्रीम कोर्ट से यह भी कहा कि समाज में पैनिक की स्थिति पैदा करना आपदा प्रबंधन कानून 2005 के अनुसार एक दंडनीय अपराध है। सर्वोच्च न्यायालय ने जो मार्गदर्शन दिया है वह प्रेस की स्वतंत्रता और इस महामारी के दौरान जिम्मेदारीपूर्ण रिपोर्टिंग के मध्य संतुलन स्थापित करने के एक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। हालिया वर्षों में प्रेस की स्वतंत्रता के मामले में भारत का रिकॉर्ड अच्छा नहीं रहा है। इस वर्ष के वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में भी हम दो स्थानों की गिरावट के साथ 142 वें स्थान पर रहे हैं। 'रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स' के अनुसार हमारे देश में निरंतर मीडिया की स्वतंत्रता का हनन हो रहा है। अब बात करते हैं मीडिया की भूमिका के बारे में हम सब जानते हैं कि इसका मूल काम सूचना देना, लोगों को शिक्षित करना और मनोरंजन करता है। यानी टू इनफार्म, टू एजुकेट, टू इंटरटेन। मीडिया द्वारा समाज को संपूर्ण विश्व में होने वाली घटनाओं की जानकारी मिलती है इसलिये उसे यथार्थपरक होना चाहिए। तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर पेश न किया जाये। सामाजिक हित में खबरों और घटनाओं का प्रस्तुतीकरण हो। उत्तम लेख, संपादकीय, ज्ञानवर्द्धक सूचनाएं, श्रेष्ठ मनोरंजन आदि सामग्रियों का प्रकाशन–प्रसारण हो। मीडिया समाज की नीति, परंपराओं, मान्यताओं तथा सभ्यता एवं संस्कृति का भी प्रहरी होता है लेकिन इस समय में ग्लोबल दुनिया लोकल की तरह सिमट गयी है। इस संकट काल में कुछ काम महत्वपूर्ण हुए हैं– जैसे धर्म और नस्ल का भेद कम हुआ है। दुनिया के हर क्षेत्र में प्रदूषण कम हुआ है। श्रम को पहचान मिली है। एक अहम् बात की कामकाजी लोगों को घर परिवार के लिए समय नहीं मिलता था, वो घर –परिवार को समय दे पाए। लेकिन अधिकांश लोगों का आर्थिक समीकरण बिगड़ा है। हम सब जानते हैं कि मीडिया समाज को नेतृत्व प्रदान करता है और इससे समाज की विचारधारा प्रभावित होती है। ऐसे में उसकी सकारात्मक भूमिका महत्वपूर्ण है। समाज में संतुलन, शांति, सौहार्द्र, समरसता और सौजन्य की भावना विकसित कर एकता व अखंडता की भावना बनाये रखने का काम मीडिया ने किया है, जो प्रेरक व उत्साहवर्द्धक है। मीडिया की इस सकारात्मकता मार्गदर्शन से ही समाज में समरसता बनी रहेगी और देश आगे बढ़ता रहेगा।

❐ **सहायक प्राध्यापक,** अस्थायी, पत्रकारिता एवं जनसंचार

डॉ. शिवकृपा मिश्र

सोशल मीडिया, युवा और भाषा

भारत में आम आदमी 20 पेज के एक अखबार को पढ़ने लिए मुश्किल से 10 से 12 मिनट खर्च करता है, जबकि टेलीविज़न देखने के लिए एक से डेढ़ घंटे। युवा पीढ़ी की बात की जाए तो वे अखबार पढ़ने के लिए बेहद कम खर्च करते हैं, जबकि टेलीविजन देखने और इंटरनेट सर्फिंग के साथ अधिक समय बिताना पसन्द करते हैं। असल में यह स्थिति भारत की नहीं, विदशों की भी है। कम्प्यूटरों की बढ़ती संख्या और ब्रॉडबैंड के फैलाव से युवा पीढ़ी तो अब टेलीविजन के बजाय इंटरनेट पर अपने सारे कार्य मसलन कोई खोज, ई–मेल, चैट, पढ़ाई करते हुए समाचारों, विचारों और सूचनाओं के लिए अपने को अपडेट रखने के लिए वेबसाइटों पर ही जाना पसंद करते हैं।

सोशल मीडिया ने अपने जन्म के साथ ही पत्रकारिता की एक नई परिभाषा गढ़ते हुए विचार प्रक्रिया और उसकी अभिव्यक्ति को एक नया आयाम दिया है। युवाओं के अंदर व्याप्त जोश और उत्साह, कुछ नया करने के जज़्बा को यथार्थ के धरातल पर उतारने के लिए एक सशक्त व सक्रिय माध्यम के साथ–साथ कुछ नयापन लिए हुए भगीरथ प्रयास की आवश्यकता थी। उनकी इस आवश्यकता की पूर्ति सोशल मीडिया के रूप में भारत में पिछले दशक से प्रारंभ हुई है और कुछ वर्षों में ही न सिर्फ इसने युवाओं को पागलपन की हद तक प्रभावित किया है, बल्कि उन्हें देश के जागरूक नागरिक होने के नाते सरोकारों से जोड़ने का कार्य भी किया है।

परम्परागत मीडिया को छोड़ा पीछे

'माध्यम ही संदेश है।' मार्शल मैकलुहान के इस सिद्धांत की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी। एक के बाद एक संचार माध्यमों का विकास और संचार के नये माध्यमों से जुड़ते जा रहे लोग परम्परागत माध्यमों को छोड़ते जा रहे हैं। संचार के माध्यमों में प्रतीकों, संकेतों, बोली, भाषा, लिपि,

पुस्तक, समाचार पत्र, रेडियो, टीवी, वेब जर्नलिज्म से आगे निकलकर सोशल मीडिया की ओर बढ़ चुके हैं। वर्तमान दौर में सोशल मीडिया के प्रति युवाओं का रुझान तेजी से बढ़ रहा है। सोशल मीडिया जनसंचार का एक ऐसा माध्यम है, जिसमें हमें सूचनाएं सही समय में मिल जाती हैं और फीडबैक तत्काल प्राप्त होने की सम्भावना अधिक रहती है। सोशल मीडिया ने सारी दुनिया को एक छोटे से हैंडसेट में समेट कर रख दिया है। यह एक ऐसा ऑनलाइन माध्यम है, जिसमें संचार के समस्त माध्यमों का कन्वर्जन हो गया है। समाचार पत्र, रेडियो, टी.वी. सहित परम्परागत माध्यम आज इंटरनेट पर वेब जर्नलिज्म में उपलब्ध हैं। यह विकास एक दिन में नहीं हुआ है। यह हजारों–लाखों वर्षों में सम्भव हो सका है।

अर्थपूर्ण भाषा का निर्माण

मानव सभ्यता के प्रारम्भ में मानव समूह में नहीं रहता था। मनुष्य अलग–थलग स्थानों पर एकांत में रहा करते थे। प्राकृतिक आपदा व जंगली जानवरों के हमलों ने उन्हें समूह में रहना सिखा दिया। समूह में एक दूसरे से बातचीत करने की आवश्यकता महसूस हुई। इसके लिए उन्होंने हाव–भाव, प्रतीकों, चिन्हों व संकेतों का प्रयोग करना शुरू किया। मानव ने अपने बीच संचार करने के लिए अपने आस–पास दिखाई देने वाली वस्तुओं से चित्र भी बनाये। जंगली जनवरों, पक्षियों व अंजाने में अपनी जुबान से निकली हुई आवाजों का अनुसरण कर अपनी बोली का निर्माण किया, फिर विविध बोलियों के मिश्रण से अर्थपूर्ण भाषा का निर्माण हुआ। भाषा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने अथवा संरक्षित करने के लिए लिपि की आवश्यकता महसूस हुई।

जनमाध्यमों का विकास

चीन ने सर्वप्रथम कागज का निर्माण किया, जो मानव समाज के लिए एक क्रान्तिकारी कदम साबित हुआ। संचार जगत के लिए यह एक महत्वपूर्ण अविष्कार था लेकिन 500 ई0 के बाद ही कागज का उपयोग प्रारंभ हुआ। चित्रों को छोटा करके कागज में समाहित करने की कोशिश की गई। 686 ई0 में दुनिया की सबसे पहली पुस्तक 'हीरक सूत्र' चीन में ही प्रकाशित हुई। 1456 ई0 में प्रिंटिंग प्रेस का अविष्कार जॉन गुटेनबर्ग ने किया। उन्होंने 1657 में 'द होली बाइबल' नामक एक किताब अपने प्रिंटिग प्रेस से निकाली। इसके साथ प्रिंटिग प्रेस का अविष्कार हुआ। 29 जनवरी,1780 में भारत का पहला समाचार पत्र जेम्स ऑगस्टस हिक्की ने निकाला, जिसका नाम 'बंगाल गजट' था इसे 'कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर'' के नाम से भी जाना जाता है।

ध्वनि आधारित संचार के दूसरे माध्यम के रूप में रेडियो का आविष्कार 1895 जी0 मारकोनी ने किया। उन्होंने 1896 में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इसका पेटेंट करवाया। 1922 में पहला ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कॉर्पोरेशन लंदन में स्थापित किया गया। 1923 में भारत का पहला रेडियो स्टेशन कलकत्ता में बना, जिसका नाम रेडियो क्लब ऑफ बंगाल था। ब्रिटिश सरकार ने रेडियो के महत्व को समझा। 1931 में इण्टर स्टेट ब्राडकास्टिग सर्विस ने इसके रेडियो प्रसारण सेवा को उद्योग व श्रम मंत्रालय के अन्तर्गत रखा। 1936 में इसका नाम बदलकर ऑल इण्डिया रेडियो रखा गया। 80 के दशक में सरकार के द्वारा एफ. एम. की शुरुआत की गई, जो ज्यादा लोकप्रिय हुई।

श्रव्य व ध्वनि पर आधारित संचार माध्यम टेलीविजन का आविष्कार 1926 में जॉन लॉगी बेयर्ड ने किया। 1958 में दिल्ली में आयोजित प्रदर्शनी में फिलिप्स कम्पनी ने टेलीविजन को प्रदर्शित किया। 15 सितम्बर, 1959 में दिल्ली में देश में टेलीविजन सेवा की शुरुआत हुई।

इंटरनेट का आविष्कार कम्प्यूटर के विकास के साथ लगभग 1950 से ही शुरू हो गया था। 1962 में जॉन लिक लाइडर ने प्रथम कम्प्यूटर रिसर्च प्रोग्राम बनाया। इसका उपयोग वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता था, किन्तु अब इसका इस्तेमाल बच्चों से लेकर बड़े तक अपनी समस्याओं के समाधान के लिए करते हैं। इसके बाद 'याहूमेल' का आगमन हुआ जिससे लोग आपस में चैट

करने लगे। धीरे– धीरे गूगल, जीमेल, ऑरकुट, ट्वीटर, फेसबुक जैसे सोशल मीडिया के आगमन से विश्व में क्रांति सी आ गई। आज रोटी, कपड़ा व मकान के साथ इन्टरनेट भी प्राथमिक आवश्यकता बन गई।

आने वाले समय में मीडिया के क्षेत्र में और विस्तार की संभावनाएं देखी जा रही हैं, जिसका हम आगे संचार के लिए उपयोग कर सकते हैं।

आनलाइन पत्रकारिता, ई–पत्रकारिता, ई–मेल, ई–बुक और ब्लाग, यूं कहें तो वह सारे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जो इटरनेट से प्राप्त सूचनाओं का सम्प्रेषण करते हैं तथा हम जिसे वेब से प्राप्त करते हैं। सोशल मीडिया का आज इतना महत्व बढ़ गया है कि यदि हम इंटरनेट से नहीं जुड़े तो पीछे चले जायेंगे।

4 जी ने इंटरनेट में लगाया चार चांद

इंटरनेट के ग्राहकों में भी भारी भीड़ मोबाइल इंटरनेट ने बढ़ा दी है। एण्ड्रायड और विण्डोफोन ने इंटरनेट को मोबाइल से जोड़ दिया है। साथ–साथ 3 जी ने इंटरनेट में तेज़ी तो लाई है अब 4 जी इसमें चार चांद लगा देगा। तब निश्चित तौर पर इस माध्यम के लिए कंटेंट जुटाने और तैयार करने वाले लोगों की परेशानियां थोड़ी कम हो जाएंगी।

इंटरनेट के आने से पहले तक सभी माध्यमों की अपनी स्वतंत्र पहचान और स्पेस थी लेकिन इंटरनेट ने इसे पूरी तरह बदल डाला है। इंटरनेट पर स्वतंत्र समाचार साइटें भी हैं, तो अखबारों के अपने ई संस्करण भी मौजूद हैं। स्वतंत्र पत्रिकाएं भी हैं तो उनके ई संस्करण भी आज कंप्यूटर से महज एक क्लिक की दूरी पर मौजूद हैं। इसी तरह टेलीविजन और रेडियो के चैनल भी कम्प्यूटर पर मौजूद हैं। कम्प्यूटर का यह फैलाव सिर्फ डेस्क टाप या फिर लैपटाप तक ही नहीं है। बल्कि यह आम–ओ–खास सबके हाथों में मौजूद पंडोरा बाक्स तक में पहुंच गया है। 2003 में बीएसएनएल की मोबाइल फोन सेवा की लखनऊ में शुरुआत करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने मोबाइल फोन को पंडोरा बाक्स ही कहा था। भारत में मोबाइल तकनीक और फोन सेवा की संभावनाओं का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि देश के बड़े टेलिकाम आपरेटरों ने 3 जी सेवाओं के लाइसेंस के लिए हाल ही में करीब 16 अरब डालर यानी 75,600 करोड़ रुपए की बोली लगाई।

संचार मंत्रालय के एक आंकड़े के मुताबिक देश में अगस्त 2020 तक मोबाइल फोन व इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या 69 करोड़ तक पहुंच गई है। यहां इस तथ्य पर गौर फरमाने की जरूरत यह है कि इन में से ज्यादातर फोन पर इंटरनेट सर्विस भी मौजूद है लेकिन मोबाइल के जरिए इंटरनेट का जोरशोर से इस्तेमाल अभी नहीं हो रहा है। एक अमरिकी संस्था श्बोस्टन कंस्लटिंग ग्रुप द्वारा इंटरनेट्स न्यू बिलियन नाम से जारी एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत का मौजूदा इंटरनेट उपभोक्ता रोजाना आधे घंटे तक इंटरनेट का इस्तेमाल करता है जिसके बढ़ने की संभावना अपार है। इस रिपोर्ट के मुताबिक सिर्फ 2015 तक ही भारत का आम इंटरनेट उपभोक्ता रोजाना आधे घंटे की बजाय 42 मिनट इंटरनेट का इस्तेमाल करने लगा।

भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ता आयु के अनुसार देखें तो कुल इंटरनेट उपयोगकर्ता का 76 प्रतिशत 18–35 आयु के हैं अर्थात् लगभग 9 करोड़ उपयोगकर्ता युवा हैं। इससे साफ ज़हिर होता है कि इंटरनेट का प्रयोग सबसे ज्यादा युवा ही करते हैं। बिलासपुर के उच्च शिक्षण संस्थानों की अगर बात की जाए तो लगभग 90 प्रतिशत विद्यार्थियों के पास ई–मेल आई.डी. है। वही 86 प्रतिशत सोशल नेटवर्किंग साइट का प्रयोग करते है, जिनमें 72 प्रतिशत लोग रोज़ाना 20 मनट सोशल नेटवर्किंग साइट साइट ओपन करते है। 45 से 55 प्रतिशत युवा लाइव टी.वी. और ई–न्यूज़ पेपर पढ़ते हैं। 10 प्रतिशत लोग इंटरनेट के बारे मे जानते है। परन्तु उपयोग नहीं करते हैं। वहीं 90 प्रतिशत शिक्षण संस्थानों ने विद्यार्थियों को इंटरनेट सुविधा कैम्पस में मुहैया करवाई है।

सोशल मीडिया और भाषा

मुख्य धारा की मीडिया की व्याकरणजनित भाषा को सोशल मीडिया ने तोड़कर रख दिया है लेकिन यह हिन्दी के विकास में कहीं न कहीं बड़ा योगदान दे रहा है। हिन्दी को सोशल मीडिया में उन क्षेत्रों में भी पहुंचा दिया है, जहां यह एक तरह से प्रतिबंधित है अथवा हिंदी बोलने पर विरोध का स्वर तेज हो उठता है। विश्व में 80 करोड़ लोग हिन्दी समझते, 50 करोड़ बोलते और 35 करोड़ लिखते थे, लेकिन सोशल मीडिया पर हिन्दी के बढ़ते इस्तेमाल के चलते, अब अंग्रेजी उपयोगकर्ताओं में भी हिन्दी का आकर्षण बढ़ा है और इन आंकड़ों में भी तेजी से वृद्धि हुई है। वर्तमान में भारत, दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा इंटरनेट उपयोगकर्ता है, जिसका श्रेय हिन्दी भाषा को भी जाता है। दरअसल भारत की आबादी का एक बड़ा तबका हिन्दी भाषा के प्रति सबसे अधिक सहज है और उसे सोशल मीडिया से जोड़ने में हिन्दी का सबसे बड़ा योगदान है।

एंड्रायड फोन ने निरक्षरों को भी लिखने की शक्ति प्रदान की है। अब बोलकर भी हिंदी ठीक–ठाक लिखी जा रही है। जिस तरह से गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रों में लोग हिन्दी फिल्मों से हिंदी सीखते थे, उसी तरह से सोशल मीडिया से भी लोग अब हिंदी सीखने लगे हैं।

दरअसल भाषा के दो प्रमुख आयाम हैं, एक जिसमें उसके शब्दों, वाक्य रचना, व्याकरण, शब्दकोश आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता है और दूसरा जिसमें उसके अर्थ या भाव पर जोर रहता है। वर्तमान में संसार की लगभग हर भाषा पर सोशल मीडिया के प्रभाव को महसूस किया जा रहा है। सोशल मीडिया ने अपनी एक नई भाषा गढ़ ली है। भाषा और शब्दों के सौंदर्य, मर्यादा, गरिमा और स्वरूप की चिंता करने वाले सभी इस नई भाषा के प्रभाव और भविष्य पर तो चिंतित हैं ही, इस पर भी हैं कि इस खिचड़ी, विकृत, कई बार अटपटी भाषा की खुराक पर पल–बढ़ रही किशोर और युवा पीढ़ी वयस्क होने पर किसी भी एक भाषा में सशक्त और प्रभावी संप्रेषण के योग्य बचेगी या नहीं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर के यहां जम्मू–कश्मीर के कॉलेजों से हिंदी की कॉपियां जांचने के लिए आती थीं। वे सभी छात्र–छात्राओं को 80–85 प्रतिशत अंक प्रदान करते थे। इस बाबत उनका कहना था कि इससे जम्मू–कश्मीर के खासकर मुस्लिम छात्र–छात्राओं में हिंदी पढ़ने के प्रति रुचि बढ़ेगी और इससे हिंदी का प्रचार–प्रसार होगा।

❐ **सहायक प्राध्यापक**, अस्थायी, पत्रकारिता एवं जनसंचार

डॉ. अनामिका तिवारी

हिन्दी भाषा का वर्तमान परिदृश्य

भाषा किसी भी देश की अस्मिता का पर्याय होती है। वहीं हमारे देश में यह अस्मिता का पर्याय नहीं, प्रश्न है। एक ऐसा प्रश्न, जिसके कई आयाम है। वर्तमान में हिंदी विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश की मुखर भाषा है। भारत विविधताओं का देश है। इस देश के विकास में भाशा की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहां भाषा एक कड़ी की भॉति है, जो देश के सभी लोगों को एक सूत्र में जोड़ती है। आजादी के समय हिंदी के भविश्य और भविश्य की हिंदी को लेकर कई तरह की आशंकाएं एवं सम्भावनाएं व्यक्त की गई थी। लोगों ने अपनी भाषा को लेकर कई सपने देखे थे। समाज की नकारात्मक मानसिकता या दृष्टिकोण से यह धूमिल हो गई।

आजादी के बाद हिंदी भाषियों को यह बोध कराया गया कि हिंदी अब पिछड़े हुए लोगों की भाषा है। इस भाषा का कोई भविष्य नहीं है। देश के अधिकांष लोगों के मन में यह भाव है कि अंग्रेजी विश्व भाषा है। इस संदर्भ में लोगों के अंतर्मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि क्या अपने ही पांव का भरोसा छोडत्रकर जनमानस बैशाखी के भरोसे अपनी मंजिल तक पहुंच पाएगा।

हिंदी के संदर्भ में हम उस क्षेत्र की चर्चा करेंगे, जिसकी देश के विकास में अहम भूमिका है। यह सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र है। भाषा को लेकर सामाजिक विज्ञान की स्थिति दयनीय प्रतीत होती है। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में सिर्फ अंग्रेजी में किताबें मिलने से हिंदी स्वतः पीछे होती जा रही है। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हिंदी में किताबें लिखने वाले भारतीयों की संख्या नगण्य है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षण एवं अध्ययन सामग्री मिलने के कारण देश से पश्चिमी राष्ट्रों में पलायन जारी है। यह मान्यता घर करने लगी है कि विदेश जाकर ही अच्छा वैज्ञानिक बना जा सकता है। वर्तमान में हमारा देश विज्ञान के प्रति रूचि रखने वाले हिंदी भाषी विद्यार्थियों पर करोड़ों रूपए खर्च कर रहा है। इससे इन विद्यार्थियों के विकास और प्रोत्साहन को गति मिल रही है। यह सत्य है कि हम अंग्रेजी की अवहेलना नहीं कर सकते, वैसे ही किसी को भी हिंदी की अवहेलना करने न दिया जाए।

❐ **सहायक प्राध्यापक,** वाणिज्य

डॉ. एम.एन. त्रिपाठी

कविताएं

कैसे कह दूं ?

हजार ठोकरें लगी मैं गिर–गिर के उठा,
कैसे कह दूं कि तुम मेरे निगहबान रहे।

मोम सी हसरतें दुश्वारियों में गल सी गई,
कैसे कह दूं कि तुम मेरे मुहाफिज–ए–अरमान रहें ।
आरजू–ए–हयात बद–ए–सबा में बिखर गई,
कैसे कह दूं कि तुम मेरे बागवान रहें ।

ओस की बूंदे जो बिखरी हैं आज अल–सुबह,
वो गम–ए–राज की सिसकियों के निशान रहे ।
हर बार तड़प के देखा मैंने,
जिस दिल में तुम बरसों मेरे मेहमान रहें ।

मैं तो ये बेजान जिंदगी अब गुजार चला,
कैसे कह दूं कि मुझपर तेरे अहसान रहे ।
अब तो आरजू–ए–खाक कुछ बचा ही नहीं,
सिर्फ दिल पें तेरे जख्मों के निशान रहे ।

ताउम्र मेरी वेदना समझ न सके,
कैसे कह दूं कि तुम मेरे भगवान रहे ।
कैसे कह दूं कि तुम मेरे निगहबान रहे ।

हजार ठोकरें लगीं, मैं गिर–गिर के उठा,
कैसे कह दूं कि तुम मेरे निगहबान रहें
मेरे भगवान रहे।।

शहीदों का अंतिम संदेश

मैं वतन की राह पे मिटता रहा,
आग सीने में लिए लड़ता रहा।
एक ही आशा थी मेरे ऐ हम–वतन,
बस तिरंगा हो मेरा अहले कफन।।

न कोई थी आरजू, न ही कोई जुस्तजू,
बस तुझे दिल में लिए चलता रहा
न कभी सोचा संवारू खुद का जहां,
मैं तुम्हारी आन पे मरता रहा ।।

ऐ मेरे अहले वतन लो मैं चला,
तेरी सुहानी गोद में मैं सो चला।
जन्नते कश्मीर पर मेरे लहू के हैं निशां,
तेरे कदमों में मेरे बस हैं यही अंतिम निशां।।

फेंक देना हर जगह ये राख मेरी,
खिल उठेगा फिर सुमन में खाक मेरी।
मैं तुम्हारे रास्तों में बिछ गया हूँ
मैं तुम्हारी आन पे ही मिट गया हूँ ।।

अब सभांलो नौजवानों तुम वतन
भर दो खुशियों से मेरा प्यारा वतन।।
भर दो खुशियों से मेरा प्यारा वतन।।

(पुलवामा के शहीदों की याद में)

❐ **सह–प्राध्यापक,** शुद्ध एवम् अनुप्रयुक्त, भौतिकी
अधिष्ठाता, छात्र कल्याण

प्रो. वी.डी. रंगारी

हाँ, मैं भी इन्सान हूँ

कविताएं

सांसों की सुरसुराहट को
हृदय की बुदबुदाहट को
जिंदगी कहते हो अगर
तो जिंदा है हम

इन मुर्दा बस्तियों में
जहां नहीं है–
इन्सानियत के नामोनिशां
या भावनाओं के कोई स्पंदन बाकी।

हमारी जिंदगी है ही क्या
सिवाय एक जिस्म के
एक जिंदा लाश के
मां की कोख में
मुझे मारने की कोशिश शुरू हो गई
इस दुनियां की हवा में
सांस तक न ले पायी थी
आंख खुलने के पहले ही मार डाला गया मुझे
भर कर मेरे मुंह में तमाक की गोलियां

जहर के घूंट
मां के दूध की जगह
नवजात शिशु की अवस्था में
नन्हीं सी मेरी गर्दन
खटिया के पांव तले कुचलते
कांप रहे थे हाथ उनके भी
न जाने मुझसे उन्हें कैसा डर था
जन्म देने वालों का ये फैसला था
क्या जन्म लेते ही मौत की सजा
मेरा अपना मुकद्दर था।

कौन रोया है नरगीज
उन अनगिनत कलियों पर
जिनका खिलखिलाकर
डालियों पर झूलना ही रहा गया
उनका दिल भी बुन रहा था
अंबर छूने के सपने परों को ही काट दिया गया
उड़ान भरने से पहले

दौड़ना चाहती थी मैं भी
जिंदगी की राह पर
आंगन भी दूर था

बचपन में पहनाए गए
लकड़ियों के जूतों की सीमा
लांघ न पाए मेरे लड़खड़ाते कदम।
अस्तित्व के इस संघर्ष में
बढ़ना चाहती हूं मैं भीड़ आगे
इस दुनिया की भीड़ से
रोज लड़ रही हूं मैं
शोषण, अन्याय, अत्याचार
जुल्म, उत्पीड़न, बलात्कार के खिलाफ।

कविताएं

चकाचौंध रोशनी में भी
ऑखों देखी हकीकतें
मनगढ़न्त कहानियां हो जाती है
क्यूं नहीं मिल पाती है सजा
कमसिनों की अस्मत लूटने वालों को

अपने–अपने घरों में
रास्तो–चौराहों में
रोज हम मना रहे हैं मातम
किसी बेटी का किसी बहन का
उस दिन एक बेबस रूपकुंवर
जलायी गयी थी सती की बलिवेदी पर
धर्म के ठेकेदार सभी मूकदर्शक
रह गये थे देखते।

उसकी अंगारों पर जलती
जवानी का चित्कार
कल पड़ी मिली थी एक नैना
तंदूर की भट्ठी में
निःसहाय अधजली सी सोयी हुई
आज फिर एक बेटी हो गयी
दिल्ली के दरिंदों के हवस का शिकार।

भाईयों के कलाई पर राखी का बंधन
माथे पर सजायी हुई सिंदूर की लाली
अंगारों के सिवा क्या दे पायी है हमें
जब जख्मों का मवाद हद से बड़ा होगा
तभी बांधा होगा फूलन ने सिर पर कफन
फोड़ी होंगी अपनी सुहाग की चूडियां
खूंखार दरिंदों की लाशों पर नाचकर।

हर बार हर हालात में
धर्म के नाम पर मुझे लूटा गया
रिवाजों की आड़ में मुझे ठगा गया
नहीं चाहिए मुझे देवियों सा सम्मान
अब नहीं सहूंगी मैं जानकी–द्रौपदी सा अपमान
मैं नहीं चाहती हूं उद्दडंता–उन्मुक्ता
मैं केवल चाहती हूं मेरा हक
समाज के एक नागरिक होने का
एक मां का, एक पत्नी का
एक बहू का, एक बेटी का।

मुझे बंदिनी बनाने वाले
मेरे ही अपने अजीज हैं
फिर क्या उम्मीद रखूं मैं
मृतप्राय समाज के लोगों से
अपने मानवीय अधिकारों को
हर हाल में छीनने हैं मुझे
आदमी परस्त दुनिया के रखवालों से

फिर भी.....
सदियों से जकड़ी हुई बेड़ियां तोड़ना
मुश्किल बहुत है
अंधेरों को बेपर्दा करना
कितना कठिन है नसरीन
अपने वतन से दूर
रो रही है ना तू भी
अपने खाये हुए घर आंगन के लिए।
सुने है चर्चे हम सब ने
लक्ष्मी, अहिल्या, नूरजहां, रजिया के
दिखाई देती है बड़ी ऊंचाईयों पर
इंदिरा, बेनजीर जैसी कई शख्सियतें।

निकल पायी थी वो सभी
नारियों के लिए खींची गई
सीमा रेखाओं से आगे
फिर भी मदर तू ही बता
कौन डाल पाया है
जिंदगी की चिंगारियॉ
सदियों से नाचती हुई कठपुतलियों के जिस्मों में
ताकि वह उठ–उठकर ऐलान कर सके
हॉ। मैं भी इन्सान हूॅ।

❐ **आचार्य एवं विभागाध्यक्ष,** फार्मेसी

मातृभाषा दिवस समारोह
21 फरवरी 2019
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

मातृभाषा दिवस समारोह
21 फरवरी 2019
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

मातृभाषा दिवस समारोह
21 फरवरी 2019
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

मातृभाषा दिवस समारोह
21 फरवरी 2019
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

एक दिवसीय
राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला
26 फरवरी, 2019
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

एक दिवसीय
राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला
26 फरवरी, 2019
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2019
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2019
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2019
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

एक दिवसीय
राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला
26 फरवरी, 2019
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ. संतोष सिंह ठाकुर

नेति - नेति

कविताएं

कोई उसे देव कहे तो कोई ईश्वर,
कोई उसे एकेश्वर कहे तो कोई अनेकेश्वर।

कोई उसे त्रयेश्वर का नाम दे तो कोई एकवाद,
कोई उसे विघ्नहर्ता कहे, तो कोई पालनहार।

कोई कहे आत्मा , तो कोई अनात्मा,
क्या सचमुच कहीं है, कोई परमात्मा ?

कोई मूर्त मानें तो कोई अमूर्त्त,
सत्य नहीं स्थानिक वो तो है सर्वभूत।

कोई उसे ''अकर्ता'' कहे तो कोई पुरूषोत्तम,
रामायण में राम है, तो कृष्ण गीता में उत्तम।।

कोई उसे निर्गुण साधे, तो पाए कोई सगुण ,
ज्ञानी कहे संसार में, ब्रम्हा ही सर्वगुण।

कोई परिपूर्ण कहे, तो कोई सच्चिदानंद।
कईयों को तो 'है' और 'नही है'दोनों में आनंद।।

जड़ और चेतन के द्वंद बड़े पुराने,
प्रकृति और पुरुष का आधार कोई तो माने।।

माया और ब्रम्हा का भेद कोई सुलझाए,
द्वैत और अद्वैत का मर्म कोई समझाये।।

क्या विशिष्टाद्वैत का यही है सब अंतर्द्वंद,
इहलोक और परलोक का कब तक रहेगा पगबंध।।

कोई तर्कातीत कहे, तो कोई भावातीत,
कोई परिमित जाने तो कोई अपरिमित।।

कोई सापेक्ष कहे, तो कोई निरपेक्ष,
बुद्धजीवियों में यही तो मतभेद।

कोई इसे वचनीय, तो कोई अनिर्वचनीय,
भाषाविदों के लिए हमेशा रहा चिंतनीय।

बुद्धि का परिदृश्य

जिस दिन बुद्धि में ज्ञाता,
ज्ञेय और ज्ञान का
पटाक्षेप हो,
सार्थक हो जीवन ध्येय तब, 'तत्व दर्शन' का
अभिषेक हो।।

❐ **सहायक प्राध्यापक,** रसायन शास्त्र

कविताएं

डॉ. शोभा बिसेन

कोलाज

आज फिर हवा थम सी गई !
जाने किस–किस कोने से
उमड़–घुमड़ आते बादल
सबको बरसने की ही पड़ी है।

कोई बरसना चाहता है जबान से
कोई आंखों से बरसना चाहता है

इन्हीं बादलों में कभी–कभी
कौध जाती है कोई एक स्निग्ध बिजली
तुम्हारा खिलखिलाता मासूम चेहरा

हमारे सारे दुखों को तहाकर रख आता है
किसी अचीन्हे कोने में हमारी पहुंच से बाहर।
लंबे सफर की थकान, मीलों चलना भूखे–प्यासे
उबड़–खाबड़ आशंकाओं में
ऊचांई और ढ़लान की

दुखों से उपजा दर्द
और दर्द से उपजे दुःखों के बीच
तुम्हारी धवल हंसी !
घुलते जाते है सारे दुख और दर्द भी
कुछ क्षण के लिए इस बरसात में

यही कुछ क्षण
बचा रखेंगे हमेशा अपने साथ !!

❐ **सहायक प्राध्यापक,** अस्थायी, हिन्दी

डॉ. निशु सिन्हा

टेसू न जाने क्यों

ये टेसू न जाने,
मुझे क्यों इतना खिंचते हैं।
अपनी ओर
जैसे रिस्ता हो कोई
अपना सा, पुराना सा,

दोनों ने
कोई आग छिपा रखा है
अपने भीतर,
इंतजार होता है,
तुम्हारे साखों पर आ जाने का

मेरे लिए ही तुम बिखरे हो,
तुम्हें देखकर मैं निखरी हूँ।

कौन सा मोहपाश हमें बांधे है,
तुम मेरी भावनाओं के रंग ले,
दमकते हो,

ये टेसू, ना जाने
मुझे क्यों इतना खिंचते हैं।
अपनी ओर ?

❐ **सहायक प्राध्यापक,** अस्थायी, इतिहास

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय के आदर्श मूल्य

1. अकादमिक सत्यनिष्ठा और मानवीय गरिमा के अनुरूप चरित्र, क्षमता और सृजनात्मकता का विकास।
2. स्थानिक, पारम्परिक और जनजातीय मूल्यों पर विशेष ध्यान देते हुए ज्ञान और नवोन्मेष के माध्यम से बुद्धिमता और श्रेष्ठता का विकास।
3. उद्यमिता एवं नवोन्मेष की भावना का संचरण।
4. वैज्ञानिक लोकाचार एवं लोकतांतिक मूल्यों का अन्तर्निवेषण।
5. सहिष्णुता, सत्य, क्षमाशीलता और ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' जैसे मूल्यों का संवर्धन।
6. सांस्कृतिक एवं सामाजिक विविधता के प्रति सम्मान का अन्तर्निवेषण।
7. विचार एवं चिन्तन की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन।
8. शिक्षार्थी केन्द्रित अकादमिक वातावरण विकसित करना और सुगमता, समानता एवं समावेशन का संवर्धन।
9. शिक्षार्थियों में राष्ट्रीय मूल्यों एवं अखण्डता का अन्तः संचरण।
10. राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शैक्षणिक प्रयासों का संवर्धन।

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम 2009 के अंतर्गत स्थापित

बिलासपुर, (छत्तीसगढ़) भारत